INTERNATIONAL MAGAZINE
RNI NO. 68884/96
Postal Regd. No. CHD/0082/2018-20
Date of Publishing : 24/08/2019
Page No. from 1 to 60
Date of posting
Last Date of Every Month
Posted by MBU
30/-

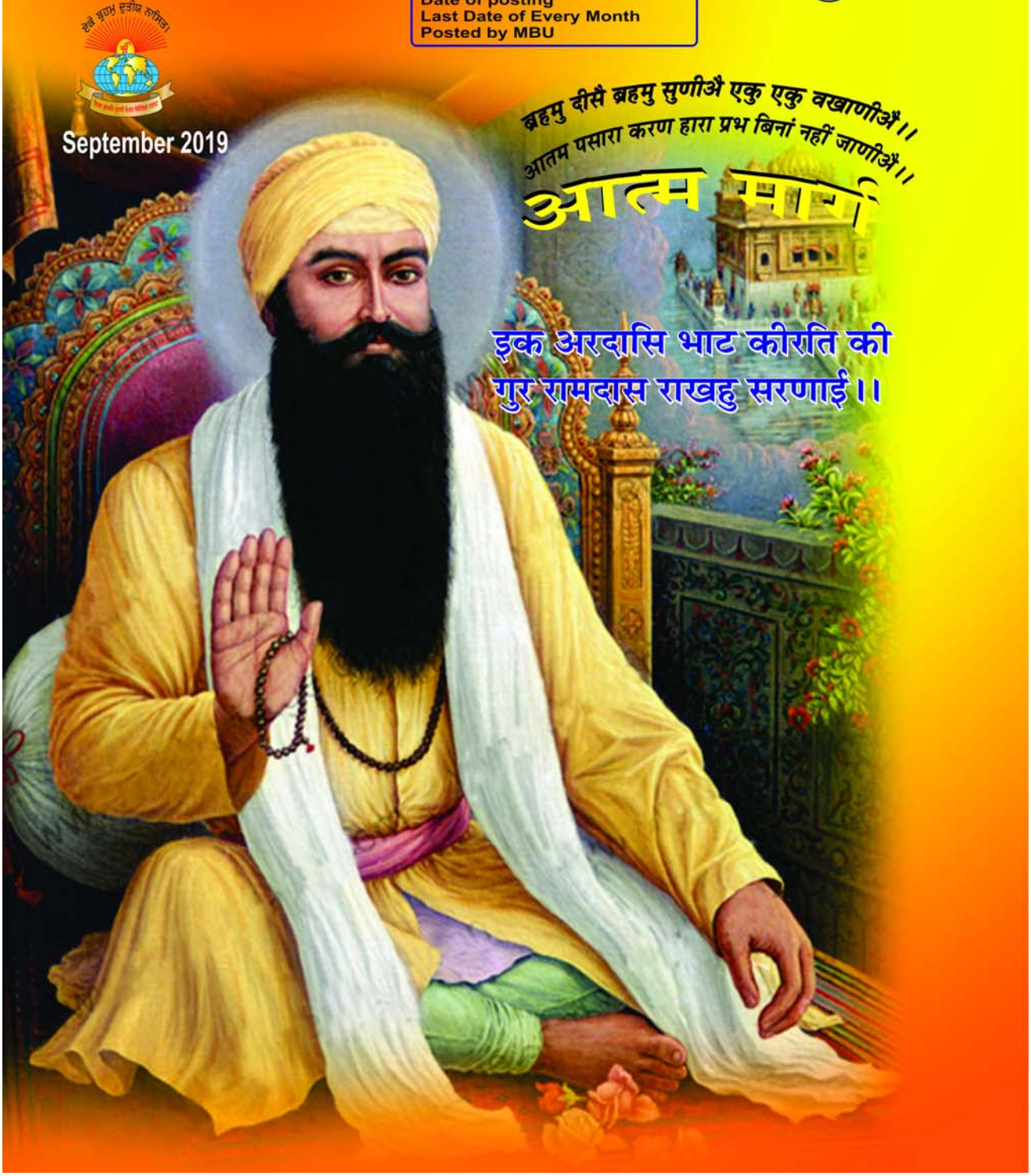

सन्त बाबा लखबीर सिंह जी
वर्तमान चेयरमैन
दिनांक 8 अगस्त को रतवाड़ा साहिब
में संगत को कीर्तन द्वारा
निहाल करते हुए

आत्म मार्ग

वर्ष चौबीसवां - अंक आठवां, सितम्बर 2019

गुरद्वारा ईशर प्रकाश रतवाड़ा साहिब

संचालक

श्रीमान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी महाराज (ब्रह्मलीन)
तथा संत माता (बीजी) रणजीत कौर जी (ब्रह्मलीन)

चेयरमैन
सन्त बाबा लखबीर सिंह जी

एडिटर-इन-चीफ
सन्त बाबा हरपाल सिंह जी

प्रबन्ध सम्पादक
भाई (डा.) सुखविंदर सिंह

मुख्य सम्पादक
डा. जगजीत सिंह

मासिक पत्रिका न पहुँचने सम्बन्धी पूछताछ

यदि आपको माह की 15 तारीख तक आत्म मार्ग पत्रिका प्राप्त नहीं हो पाती है तो आप कृप्या निम्नलिखित सम्पर्क नम्बरों पर कार्यलय समय प्रातः 10.00 बजे से सायं 6.00 बजे तक सम्पर्क करने की कृपा करें -

सम्पर्क न. - **84378-12900, 94172-14391, 94172-14379**

Email : atammarg1@yahoo.co.in

Postal Address for any Enquiry, Money Order's :

'ATAM MARG' MAGAZINE
Gurdwara Ishar Parkash, Ratwara Sahib (New Chandigarh) P.O. Mullanpur Garibdas, Teh. Kharar, Distt. S.A.S. Nagar (MOHALI) - 140901, Pb. India

SUBSCRIPTION - शुल्क (देश)

वार्षिक	आजीवन सदस्यता	प्रति कापी
300/-	3000/-	30/-
320/-	3020/-	(For outstation cheques)

SUBSCRIPTION FOREIGN (विदेश)

	Annual	Life
U.S.A.	60 US$	600 US$
U.K.	40 £	400 £
Canada	80 Can $	800 Can $
Australia	80 Aus $	800 Aus $

प्रकाशन के समस्त अधिकार सुरक्षित हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक सन्त बाबा हरपाल सिंह जी ने 'आत्म मार्ग' जै आफ सैट प्रिंटर्ज, 905 इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज़-2, चण्डीगढ़ से छपवा कर मुख्य कार्यालय 'आत्म मार्ग' रतवाड़ा साहिब, डाकखाना मुल्लांपुर, तहसील खरड़, एस.ए.एस. नगर (मोहाली), पंजाब से प्रकाशित किया।

Please visit us on internet at :-
For Atam Marg Email : atammarg1@yahoo.co.in,
Website & Live video -

www.ratwarasahib.in
www.ratwarasahib.org } **(Every sunday)**

Email: sratwarasahib.in@gmail.com

विदेशों में आत्म मार्ग की शाखाएँ

अमेरिका - बाबा सतनाम सिंह अटवाल
फोन तथा फैक्स : 001-408-263-1844

कैनेडा - भाई सरमुख सिंह पंनू, वैनकूवर
फोन : 001-604-433-0408

भाई तरसेम सिंह बैंस - मोबाइल 001-604-862-9525
फोन : 001-604-288-5000

भाई जसबीर सिंह राणू - फोन : 001-604-589-9189

इंगलैंड - बीबी गुरबख्श कौर तथा भाई जगतार सिंह जग्गी
फोन:0044-121-200-2818 फैक्स :0044-121-200-2879,
भाई अरविंदर सिंह (राज) मोबाइल:0044-7968734058

आस्ट्रेलिया : बीबी जस्प्रीत कौर: मोबाइल-0061-406619858

रतवाड़ा साहिब की संस्थाओं के सम्पर्क नम्बर

* आत्म मार्ग मैगज़ीन (पंजाबी, हिन्दी तथा अंग्रेजी)
9417214391, 9417214379, 8437812900

* गुरू गोबिंद सिंह विद्या मन्दिर सीनियर सैकण्डरी स्कूल
(CBSE) - 0160-2255003

* माता साहिब कौर मुफ्त सिलाई सैंटर - **96461-01996**

* सन्त वरियाम सिंह मैमोरियल पब्लिक सीनियर सैकण्डरी स्कूल
(PSEB) अंग्रेजी माध्यम - **95920-55581**

* सन्त वरियाम सिंह चैरिटेबल अस्पताल (मुफ्त)
98786-95178, 92176-93845

* इंटरनैशनल डिवाइन स्कूल आफ़ नर्सिंग -
94172-14382

* इंटरनैशनल डिवाइन कालेज आफ़ ऐजूकेशन (बी. एड.)
94172-14382

* अकाल वृद्ध आश्रम (मुफ्त) **98157-28220**

विशेष जानकारी के लिए

श्री मान जी	-	98551-32009
श्री आखण्ड पाठ साहिब बुकिंग	-	94647-12900
आडियो-वीडियो लाईब्रेरी	-	98728-14385, 98555-28517
केवल टी.वी. नेटवर्क	-	94172-14385

अन्य सम्पर्क नम्बर
98889-10777, 96461-01996, 9417214381

विषय-सूची

1. सम्पादकीय 5
भाई (डा.) सुखविन्दर सिंह

2. बारहमाहा 7
सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

3. नाम सिमरन की विधि 11
सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

4. बाबाणियाँ कहानियाँ 19
सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

5. नानक से अखड़ीआं बिअंनि जिनी डिसंदो मा पिरी।। 22
सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

6. बुनना तनना तिआगि के प्रीति चरन कबीरा।। 32
सन्त बाबा हरपाल सिंह जी

7. सितम्बर माह के विशेष दिवस तथा पर्व 37
डा. जगजीत सिंह

8. नूरानी मिलाप - 13 42
भाई (डा.) सुखविन्दर सिंह

9. ईश्वर अमोलक लाल 44
रचना - सन्त ईशर सिंह जी, राड़ा साहिब

10. गुरबाणी अर्थ भण्डार 47
सन्त हरी सिंह जी 'रन्धावे वाले'

11. वारां भाई गुरदास जी 50
डा. भाई बीर सिंह जी

12. भाई नंद लाल जी 52

13. स्वामी राम जी के प्रेरणात्मक विचार 53
डा. स्वामी राम जी

14. विशेष जानकारी - बैंक खाता, आत्म मार्ग मैगजीन सदस्यता प्रारूप, अस्पताल जानकारी, तथा पुस्तक सूची 55

सम्पादकीय

(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

बाजीगरि जैसे बाजी पाई ॥
नाना रूप भेख दिखलाई ॥ ***अंग - 636***

जीवन एक विचित्र खेल है। इस खेल की बारी न तो समाप्त होने वाली है और न ही रुकने वाली है, भावार्थ यह यात्रा कभी भी न समाप्त होने वाली है। इस खेल का यह ढंग लगभग अधिकांश योनियों के साथ लागू हो रहा है। मनुष्य योनि के अन्दर भी पामर, भोगी व विषयी लोगों के लिए यह यात्रा कभी भी न समाप्त होने वाली तथा कभी भी न रुकने वाली है -

कई जनम भए कीट पतंगा ॥
कई जनम गज मीन कुरंगा ॥
कई जनम पंखी सरप होइओ ॥
कई जनम हैवर ब्रिख जोइओ ॥ 1 ॥
मिलु जगदीस मिलन की बरीआ ॥
चिरंकाल इह देह संजरीआ ॥ ***अंग - 176***

इसी वर्ग में एक श्रेणी परमात्मा के भक्तों व प्यारों की है, उनकी अवस्था है -

आखा जीवा विसरै मरि जाउ ॥ ***अंग - 9***

यह श्रेणी स्वीकार्य आत्माओं की है यह श्रेणी पंच परवाण की श्रेणी है, पंच खण्डों वाली अवस्था को प्राप्त अभेद पुरुषों की है। समर्थ सतगुरू की बख्शीश प्राप्त करके, अभेद हुए महापुरुषों द्वारा यह बारी अथवा खेल की यह बाजी जीत ली जाती है -

सफल सफल भई सफल जात्रा ॥
आवण जाण रहे मिले साधा ॥ 9 ॥ ***अंग - 687***

अधिकांश लोगों की हालत इस प्रकार की है कि -

उचे मंदर सुंदर नारी॥
राम नाम बिनु बाजी हारी ॥ ***अंग - 659***

जीवन की बाजी जीतने वाले केवल अपनी बारी तक ही सीमित नहीं रहते हैं, बल्कि वे तो अन्य लोगों द्वारा खेली जानी बारियों के मार्ग दर्शक बन जाते हैं -

संत सहाई जीअ के भवजल तारणहार ॥ अंग - 929

जो ब्रहमंडे सोई पिंडे जो खोजै सो पावै ॥
अंग - 695

वे इस ब्रह्मांड को अपने शरीर रूपी घर में देख लेते हैं लेकिन वे सांसारिक खेल नहीं खेलते हैं, सांसारिक खेल को खेलते हुए मनुष्य द्वारा स्वयं को रिझाने के लिए साधनों की खोज बहुत तीव्र गति से की जा रही है। इंटरनेट जैसे अविष्कारों ने सारे दृश्यमान संसार को एक स्क्रीन पर लाकर खड़ा कर दिया है। इसका जो परिणाम निकला उसका गवाह हमारा वर्तमान है, वर्तमान में जीवन जीने वाले जीवों की त्राहि-त्राहि करती हुई दशा और उनकी बेचैनी प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ रही है। आजकल के तमाम शारीरिक सुख प्रदान करने वाले साधनों ने अधिकांश लोगों की शान्ति को भंग कर रखा है -

बिनु हरि नाम न साँति होइ कितु बिधि मनु धीरे ॥
अंग - 707

आजकल अशान्त वातावरण बढ़ता जा रहा है। यह मनुष्य ही ऐसा जीव है जो कि अपनी जिन्दगी में खतरों को बोने का माहिर है। आज के मनुष्य का भविष्य खतरे की तरफ बढ़ता जा रहा है। ऋषियों-मुनियों व गुरू-पीरों के उपदेशों को तिलांजलि देकर, दिमागी आविष्कारों से प्राप्त सुख के साधनों में लोभायमान हो रहा है। वास्तव में मनुष्य आया तो लाभ प्राप्त करने के लिए था लेकिन वह उसके विपरीत घाटे का व्यापार ही करता जा रहा है। फलस्वरूप उसकी बेचैनी उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। यात्रा केवल शरीर की नहीं बल्कि आत्मा की भी जारी है। जीवात्मा की यात्रा भी निरन्तर जारी है और यह यात्रा कभी न रुकने वाली और कभी न समाप्त होने वाली है। इसीलिए हमें आवश्यकता है उन गुरू उपदेशों को कमाने की जो कि हमारे सारे मसलों का सार्थक हल करने में समर्थ हैं -

प्राणी तूं आइआ लाहा लैणि ॥
लगा कितु कुफकड़े सभ मुकदी चली रैणि ॥
अंग - 43

यह जीवन का खेल जीतने के लिए आया था, लाभ प्राप्त करने के लिए आया था लेकिन यह जीव ऐसी दलदल में फँस गया कि वह जीवन रूपी बाजी को लगभग हार ही चुका है और भावी योनियों में पड़कर फिर बार-बार अपनी बारियों को खेलने के लिए तैयार होता रहता है।

लख चउरासीह जोनि सबाई॥
माणस कउ प्रभि दीओ वडिआई ॥ ***अंग - 1075***

इस जीवन रूपी खेल को किस प्रकार से खेलना है तथा बारी किस प्रकार से जीतनी है, इस सारे मसले का हल बतलाते हुए गुरू जी फुरमान करते हैं कि -

करउ बेनंती सुणहु मेरे मीता संत टहल की बेला ॥
ईहा खाटि चलहु हरि लाहा आगै बसनु सुहेला ॥
अंग - 13

शरीर को साधन बनाकर जीव ने अपनी इस असीम यात्रा को समाप्त करना है। इस दृश्यमान संसार में रहते हुए अपनी सुरति को वाहिगुरू जी के साथ जोड़कर रखना है और कुदरत में से ही कादर की पहचान करनी है और यह तभी सम्भव हो पाएगा यदि हम समर्थ सतगुरू की शरण में जाएँगे तथा सतगुरू की शरण में जाकर एवं उसके आशय के अनुसार चलते हुए यह प्रार्थना करेंगे कि -

हम अंधुले अंध बिखै बिखु राते किउ चालह गुर चाली॥
सतगुरू दइआ करे सुखदाता हम लावै आपन पाली ॥
अंग - 667

फिर यह जीवन का खेल विजय की तरफ अग्रसर हो सकता है और इस जीव की यात्रा सदा के लिए समाप्त हो सकती है यथा 'आवण जाण रहे मिले साधा।। (अंग - 687)' अभेदावस्था को प्राप्त होकर सदा के लिए अमर जीवन प्राप्त हो जाता है -

गुर किरपा जिह नर कउ कीनी
तिह इह जुगति पछानी ॥
नानक लीन भइओ गोबिंद सिउ
जिउ पानी संगि पानी ॥ ***अंग - 634***

यही आत्मा का मार्ग है और इसी आत्म मार्ग पर चलते हुए जीवन की बारी को जीता जा सकता है। ट्रस्ट रतवाड़ा साहिब के मुखी व संस्थापक प्यारे महापुरुषों का यही ध्येय व सपना था कि प्रत्येक प्राणी जीवन की बाजी को जीत कर जाए। परमात्मा के साथ अभेद हो चुके लोगों की अवस्था के बारे में गुरू जी इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ ॥
नानक अवरू न जीवै कोइ ॥ ***अंग - 142***

इसी संकल्प को लेकर आत्म मार्ग मैगजीन पिछले चौबीस वर्षों से आप जी के सन्मुख दस्तक दे रहा है। गुरू जी कृपा करें ताकि आप सबको जीवन के इस विचित्र खेल में जीत प्राप्त हो।

ट्रस्ट रतवाड़ा साहिब के वर्तमान मुखी श्रीमान सन्त बाबा लखबीर सिंह जी द्वारा गुरमति प्रचार की श्रृंखला के मद्देनजर जून तथा जुलाई माह में अमेरिका में दीवान सजाए गए फलस्वरूप अनेकों प्राणी कीर्तन का लाभ प्राप्त करके शब्द गुरू श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के साथ जुड़े हैं। इसी प्रचार श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए आप जी सितम्बर माह में कनाडा जा रहे हैं। कनाडा के पृथक-पृथक शहरों में कीर्तन व दीवानों के कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। आप सब अपने कनाडा में रह रहे सगे सम्बन्धियों व मित्रगणों को इन कीर्तन के कार्यक्रमों के बारे में जानकारी प्रदान करें ताकि वे लोग अधिकाधिक संख्या में इन कार्यक्रमों का लाभ प्राप्त कर सकें।

रतवाड़ा साहिब के सालाना गुरमति समागम से सम्बन्धित पहली मीटिंग 25 अगस्त को हो चुकी है। समागम के सारे प्रबन्ध को सुचारू रूप से चलाने के लिए सेवाओं का विभाजन कर दिया गया है। अनेकों प्रेमीजनों ने मीटिंग में भाग लेते हुए सेवाएँ प्राप्त कर ली हैं। श्रद्धा तथा प्यार के कारण प्रेमीजन विभिन्न सेवाएं करने के लिए उत्सुक व आतुर हैं ताकि समागम में आने वाली संगत को किसी भी प्रकार की असुविधा न आ सके। देश व विदेशों में सुदूरवर्ती स्थानों पर रहने वाले श्रद्धालुजनों को निवेदन है कि वे रतवाड़ा साहिब में आयोजित हो रहे इस वार्षिक गुरमति समागम में पहुँचने से सम्बन्धित अग्रिम सूचना प्रबन्धकों को देने की कृपा करें ताकि आप सबके लिए आवश्यक व योग्य प्रबन्ध किए जा सकें।

ट्रस्ट रतवाड़ा साहिब द्वारा समस्त श्रद्धालुजनों व समस्त पाठकगणों को, वार्षिक समागम में पहुँचने के लिए आमन्त्रित किया जाता है।

धन्यवाद सहित।

असुनि

(असुनि माह की संक्रान्ति - 17 सितम्बर दिन मंगलवार)

सन्त वरियाम सिंह जी
बानी वि. गु. रू. मिशन

असुनि प्रेम उमाहड़ा किउ मिलीऐ हरि जाइ।
मनि तनि पिआस दरसन घणी कोई आणि मिलावै माइ।
संत सहाई प्रेम के हउ तिन कै लागा पाइ।
विणु प्रभ किउ सुखु पाईऐ दूजी नाही जाइ।
जिन्ही चाखिआ प्रेम रसु से त्रिपति रहे आघाइ।
आपु तिआगि बिनती करहि लेहु प्रभू लड़ि लाइ।
जो हरि कंति मिलाईआ सि विछुड़ि कतहि न जाइ।
प्रभ विणु दूजा को नही नानक हरि सरणाइ।
असू सुखी वसंदीआ जिना मइआ हरि राइ॥

अंग - 134

पिछला महीना भादों का बीत गया, इस में गुरू महाराज जी ने दुनियां के सम्बंधों को बेकार बताया और दुनियां के साथ प्रेम करने वाली भ्रान्तियों से सुचेत (Warning) किया कि प्यारे! जब यमदूतों का मजबूत हाथ लगेगा, उस समय बोलने का भी वक्त नहीं मिलना -

इक रती बिलम न देवनी वणजारिआ मित्रा
ओनी तकड़े पाए हाथ॥ *अंग - 78*

किसी को भेद नहीं मिलना, सभी के सामने जीव-आत्मा को पकड़ लिया। जिनके साथ तू रमा रहा - काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, निंदा, चुगली, ईर्ष्या, भेद-भाव वे सभी साथ छोड़कर भाग गये और अपने बोये हुये कर्मों का फल भोगने के लिए, सच की कचहरी में ले जाया गया। पर साथ ही गुरू महाराज जी ने इस डांवाडोल हुये जीव को बता दिया कि प्रभु के चरणों का जहाज (बोहिथा) उछालें मारता हुआ, अग्नि सागर को पार कराने में समरथ है और कृपा करके यह भी गुप्त रहस्य प्रकट कर दिया कि नरकों में वही जाते हैं, जिनका प्यार माया के छल में, भुलावे में रमा रहता है। वह प्यार नष्ट हो जाता है, साथ नहीं जाता, पर इसके विपरीत, समरथ गुरू का प्यार, इसे भवजल में डूबने नहीं देता। सारा महीना भादों की उमस में यह सोचता रहा कि गुरू का प्यार कहाँ से मिले, गुरू कहाँ मिले? प्रार्थनाएं करता रहा कि हे प्रभु! कृपा कर, मुझे कोई मिला, कोई रसिक वैरागी प्यारा, जो तेरा ही रूप बन चुका हो। प्रार्थना सुनी गई, पूर्ण सतगुरू से मिलाप हो गया। गुरू ने वह मन्त्र दे दिया, जिसका जप करने से हउमै का अन्धकार पूरी तरह से दूर हो जाता है और यह जीव देख ले कि मैं कौन हूँ, मैं क्या हूँ? साथ ही समरथ गुरू ने आदेश दिया कि हे भ्रान्तिमय जीव! तू झूठों की, अपूर्ण लोगों की संगत छोड़ दे और प्यार में - उन रंग में रंगे हुओं को, जो सदा मेरे साथ जुड़े रहते हैं, अभेद रहते हैं और जिन्हें हम सन्त कह कर उनका आदर करते हैं। उनकी संगत कर वह तेरा साथ यहाँ भी निभायेंगे और दरगाह में भी तेरा साथ देंगे -

नानक कचड़िआ सिउ तोड़ि ढूढि सजण संत पकिआ।
ओइ जीवंदे विछुड़हि ओइ मुइआ न जाही छोड़ि॥

अंग - 1102

ऐसे रंग में रंगे हुये प्रभु का प्यार रोम-रोम में प्रवेश कर देते हैं। अपने प्रभु की कथाएं कह-कह कर माया के प्यार से बाहर निकाल देते हैं। अब जिज्ञासा पूर्ण वेग से जाग्रत

हुई, एक उमंग उठ खड़ी हुई, हृदय में एक तीव्र धारणा उठी, उमंग बढती ही चली गई, प्रभु मिलन की लालसा ने आकर्षित किया, विरह जाग्रत हुई, नैनों से नीर बहने लग गया और तरले कर रहा है -

हरि हरि सजणु मेरा प्रीतमु राइआ।
कोई आणि मिलावै मेरे प्राण जीवाइआ।
हउ रहि न सका बिनु देखे प्रीतमा
मै नीरु वहे वहि चलै जीउ।
सतिगुरू मित्रु मेरा बाल सखाई।
हउ रहि न सका बिनु देखे मेरी माई।
हरि जीउ क्रिपा करहु गुरु मेलहु
जब नानक हरि धनु पलै जीउ॥ *अंग - 98*

अन्दर विरह की पीड़ा तीव्र हो उठी। माया में भटके हुए जीवों को क्या पता - इस विरहाग्नि का। प्यार के बाणों ने घायल कर दिया। मछली की तरह तड़प रहा है - बिना पानी के -

हरि दरसन कउ मेरा मनु बहु तपतै जिउ त्रिखावंतु बिनु नीर।
मेरै मनि प्रेमु लगो हरि तीर।
हमरी बेदन हरि प्रभु जानै मेरे मन अंतर की पीर॥
अंग - 862

रोज़ हृदय से सन्देशे भेजे जाते हैं - अपने प्यारो को। पर कोई जवाब नहीं आ रहा। शायद कोई सन्देशा पहुँचाने वाला बिचोलिया न मिल सका हो; तड़प है अन्दर। बड़ी से बड़ी भेंट देने को तैयार है - बिरह कुठी रूह (बिरह से जलती रूह) -

हउ मनु अरपी सभु तनु अरपी अरपी सभि देसा।
हउ सिरु अरपी तिसु मीत पिआरे जो प्रभ देइ सदेसा॥
अंग - 247

बिरह से जलती रूह को हक की आवाज़ सुनाई दी, सच के बोल प्रगट हुये कि तेरी आवाज़ उस प्यारे तक नहीं पहुँचती क्योंकि तूने अपने आप ही एक दीवार अपने आपको अलग रख कर बना ली। जिसे तू मिलना चाहता है, वह तो बिल्कुल तेरे साथ है पर तेरी दीवार न उसके दर्शन करने देती है और न ही तेरी आवाज़ इस मजबूत चारदीवारी से बाहर जाने देती है -

हउ हउ भीति भइओ है बीचो सुनत देसि निकटाइओ।
भांभीरी के पात परदो बिनु पेखे दूराइओ॥अंग - 624

तू पूर्ण गुरू की शरण में जा, उसकी कृपा के बिना तेरा मिलाप नहीं हो सकता। उसकी कृपा की याचना कर, उसकी चरण सेवा कर। वह तेरे पर खुश होगा और इस दीवार को तोड़ देगा। तुझे सच की बात का एक भेद बताया जा रहा है; इसे समझ -

धन पिर का इक ही संगि वासा विचि हउमै भीति करारी।
गुरि पूरै हउमै भीति तोरी जन नानक मिले बनवारी॥
अंग - 1263

गुरू दयाल हो गया -

भइओ किरपालु सरब को ठाकुरु सगरो दूखु मिटाइओ।
कहु नानक हउमै भीति गुरि खोई
तउ दइआरु बीठलो पाइओ॥ *अंग - 624*

धन्य हैं वे, जिनके मन में लालसा जाग्रत हुई। दर्शनों की लालसा जाग जाना ही कृपा है। वह जिन्दा है, जिसके अन्दर प्यार की नदी बहती है। दर्शनों की लालसा में प्रतीक्षा करता रहता है।

जिसु जन कउ प्रभ दरस पिआसा।
नानक ता कै बलि बलि जासा॥ *अंग - 266*

दर्शनों की प्यास वाला जीवित माना जाता है। उसके अन्दर प्यार की नदी बहती है, उसे और किसी प्रकार की इच्छा नहीं है। वह जीवित है, संसार मुर्दा है प्यार बिना -

अति सुंदर कुलीन चतुर मुखि डिआनी धनवंत।
मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नही भगवंत॥
अंग - 253

वह अपने प्यारे के दर्शनों के लिए, जो कुछ भी उसके पास है, वह अर्पण करने को तैयार है -

जप तप संजम पुंन सभि होमउ तिसु अरपउ सभि सुख जांई।
एक निमख प्रिअ दरसु दिखावै तिसु संतन कै बलि जांई।
करउ निहोरा बहुतु बेनती सेवउ दिनु रैनाई।
मानु अभिमानु हउ सगल तिआगउ जो प्रिअ बात सुनाई॥
अंग - 1207

भाई गुरदास जी ने वियोगी के दिल की व्यथा का वर्णन करते हुए अंकित किया है कि -

बायस उडह बल जाउ बेग मिलौ पीय
मिटै दुख रोगु सोगु बिरह बियोग को।
अवध बिकट कटै कपट अंतरि पटु
देखउ दिन प्रेम रस सहज संजोग को।
लाल न आवत शुभ लगन सगन भले
होइ न बिलंभ कछु भेदु बेद लोक को।

अतिहि आतुर भई अधिक औसेर लागी।
धीरज न धरो खोजौ धारि भेख जोग को॥
कबित भाई गुरदास जी

सो मिलाप के लिए आश्विन के इस महीने में उमस पैदा हो गई है। इस आकर्षण का वर्णन सखियों, सहेलियों के साथ करते हुए बताते हैं -

सखी सहेली गरबि गहेली।
सुणि सह की इक बात सुहेली।
जो मै बेदन सा किसु आखा माई।
हरि बिनु जीउ न रहै कैसे राखा माई।
हउ दोहागणि खरी रंजाणी।
गइआ सु जोबनु धन पछुताणी।
तू दाना साहिबु सिरि मेरा।
खिजमति करी जनु बंदा तेरा।
भणति नानकु अंदेशा एही।
बिनु दरसन कैसे रवउ सनेही॥ *अंग - 990*

तरले करती है दर्शन करने के -

असुनि प्रेम उमाहड़ा किउ मिलीऐ हरि जाइ।
मनि तनि पिआस दरसन घणी कोई आणि मिलावै माइ॥
अंग - 134

है कोई संसार में, माया के मण्डल में जो सहायता कर सकता हो और मिलाप करा दे? माया के मारे हुये, सभी मुर्दे हैं। जीवन धारा उनमें बह नहीं रही। अन्न, पानी के साथ शरीर चल रहे हैं। मुर्दों से क्या आशा की जाये कि मिलाप करा दें?

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ।
नानक अवरु न जीवै कोइ।
जे जीवै पति लथी जाइ।
सभु हरामु जेता किछु खाइ॥ *अंग - 142*

ये क्या मिलाप करवायेंगे? वही मिलाप करा सकते हैं जो स्वंय मिलाप कर चुके हैं। जो अपने आप को त्याग कर प्रभु का रूप बन गये हैं, जिनके बारे में फ़रमान है -

जिन्हा न विसरै नामु से किनेहिआ।
भेदु न जाणहु मूलि सांई जेहिआ॥ *अंग - 397*

उन्हें क्या कहा जाये? गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि वे मेरे प्यारे सन्त हैं। वे मुझे कभी नहीं भूलते तथा मेरे साथ अभेद हुये, मेरा ही रूप बन गये हैं -

दास अनिंन मेरो निज रूप॥ *अंग - 1252*

जिना सासि गिरासि न विसरै हरि नामां मनि मंतु।
धंनु सि सेई नानका पूरनु सोई संतु॥ *अंग - 319*

प्यारे! गिनती वगैरहा छोड़ दे। तुझे गुरू बार-बार ऐसे अभेद पुरुषों के बारे में बताते हैं, भेजते हैं तुझे उनके पास, जो मिला सकते हैं; आप मिले हुये हैं। मिलने के बिना सुख नहीं और ऐसी कोई जगह भी नहीं, जहाँ सुख ढूंढा जा सके।

संत सहाई प्रेम के हउ तिन कै लागा पाइ।
विणु प्रभ किउ सुखु पाईऐ दूजी नाही जाइ।
जिन्ही चाखिआ प्रेम रसु से त्रिपति रहे आघाइ॥
अंग - 134

गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि यह प्रेम रस कैसे प्राप्त कर सकता है और साथ ही साथ यह भी कहते हैं आप जाओ, पूछो उन्हें, जिन्होंने प्रेम रस का आनन्द उठाया है। यह प्रेम रस कहाँ मिलता है?

रस अंम्रितु नामु रसु अति भला कितु बिधि मिलै रसु खाइ।
जाइ पुछहु सोहागणी तुसा किउकरि मिलिआ प्रभु आइ।
ओइ वेपरवाह न बोलनी हउ मलि मलि धोवा तिन पाइ।
भाई रे मिलि सजण हरिगुण सारि।
सजणु सतिगुरु पुरखु है दुखु कढै हउमै मारि।
गुरमुखीआ सोहागणी तिन दइआ पई मनि आइ।
सतिगुर वचनु रतंनु है जो मंने सु हरिरसु खाइ॥
अंग - 41

भेद बता दिया उन्होंने कि जो सतगुरू का वचन है जो उसकी कमाई करता है, मानता है, उसे हरि रस प्राप्त हो जाता है। भाग्यशाली हैं वो, जिन्हें गुरू की रज़ा में इस रस की प्राप्ति हो जाती है -

से वडभागी वड जाणीअहि
जिन हरिरसु खाधा गुरभाइ॥ *अंग - 41*

वे क्यों विलाप करते हैं। क्योंकि माया की अग्नि उन्हें दिन रात जला रही है और विष्ठा के कीड़ों की तरह कुलबुला रहे हैं। मोतियों के मन्दिर, रतनों के साथ जड़े हुये, मन मोहिनी स्त्रियां, सुन्दर सेजें, ऋद्धि-सिद्धि, मशहूरी, राजसी शक्तियां, राजसी प्राप्तियां ये कुछ भी नहीं सहारा दे रहीं। हृदय जल रहा है, हाय! हाय! की आवाज़ सुनती है, क्योंकि गुरू के नाम रस की सूझ के बारे में बताया है -

हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ।
मै आपणा गुरु पूछि देखिआ अवरु नाही थाउ॥
अंग - 14

सो ये भाग्यहीन, विलाप कर रहे हैं। उनका प्यार सतगुरू के साथ नहीं, माया के साथ है। सतगुरू पर श्रद्धा नहीं रखता। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार में जल रहे हैं -

ओइ सतिगुर आगै न निवहि ओना अंतरि क्रोधु बलाइ॥
अंग - 41

अन्त में गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि वाहिगुरू की पूर्ण प्रेम है। प्रेम के रूप में ही खण्डों, ब्रह्मण्डों में, हर स्थान पर ज्योति स्वरूप होकर अपनी की गई किरत को देख कर प्रसन्न हो रहे हैं।

जिमी जमान के बिखै समसति एक जोत है।
न घाट है न बाढ है न घाटि बाढि होत है॥
अकाल उसतति

यह परम ज्योति प्रेम का रूप होकर संसार में फैली हुई है -

जत्र तत्र दिसा विसा हुइ फैलिओ अनुराग॥
जापु साहिब

सो महाराज जी फ़रमान करते हैं -

हरि हरि हरि रसु आपि है आपे हरिरसु होइ।
आपि दइआ करि देवसी गुरमुखि अंम्रितु चोइ।
सभु तनु मनु हरिआ होइआ नानक हरि वसिआ मनि सोइ॥
अंग - 41

सो यह प्रेम रस जिन्होंने चख लिया, उनकी वासनायें खत्म हो गई। मन अ-मन हो गया और प्यार में घुल मिलकर वाहिगुरू के रूप में समा (विलीन हो) गया। अब पता नहीं चलता, 'मैं', 'तू' बन गई और 'तू' 'मैं' बन गई। कौन परखे? किसके पास समय है, इस रस से अलग होने का?

गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि छोड़ दो 'मैं' भाव और प्रार्थना करो कि हे प्रभु! चक्कर लगाते कई युग बीत गये, अब तो कृपा करके अपनी शरण में ले लो -

आपु तिआगि बिनती करहि लेहु प्रभू लड़ि लाइ॥
अंग - 135

जो प्रभु की शरण में चले जाते हैं, वे फिर नहीं बिछुड़ते क्योंकि प्रभु के बिना और उसके समान कोई है ही नहीं। सच तो यह है कि आप ही आप है, उसके बिना दूसरा कोई नहीं -

आपु तिआगि बिनती करहि लेहु प्रभू लड़ि लाइ।
जो हरि कंति मिलाईआ सि विछुड़ि कतहि न जाइ।
प्रभ विणु दूजा को नही नानक हरि सरणाइ।
असू सुखी वसंदीआ जिना मइआ हरि राइ॥
अंग - 135

सो सुखी हैं वे, जिन पर प्रभु की कृपा हो गई। हे प्रभु! मैं भूल गया हूँ, बहुत समय बीत गया -

बहुत जनम बिछुरे थे माधउ इहु जनमु तुम्हारे लेखे।
कहि रविदास आस लगि जीवउ चिर भइओ दरसनु देखे॥
अंग - 694

कितने रूपों में चक्कर खाये, कोई गिनती नहीं कर सकता। क्या-क्या मैं बनता रहा? कैसे-कैसे शरीर धारण करता रहा -

कई जनम भए कीट पतंगा। कई जनम गज मीन कुरंगा।
कई जनम पंखी सरप होइओ। कई जनम हैवर बिख जोइओ॥
अंग - 176

अब कृपा कर! मुझे अपना बना ले। मुझे मिला ऐसा सतगुरू, जो हंसते हुए, खेलते हुए, पहनते हुए, खाते हुए युक्ति बताकर मेल करा दे।

नानक सतिगुरि भेटिऐ पूरी होवै जुगति।
हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ
विचे होवै मुकति॥
अंग - 522

आवश्यक निवेदन

रिन्युवल का चन्दा भेजने के लिए मेंबरशिप नम्बर (सदस्यता संख्या) तथा रिन्युवल तारीख (पुनर्नवीनीकरण तिथि) का व्यौरा अवश्य दिया जाए तथा यह भी बतलाया जाए कि चन्दा, रिन्युवल के लिए है अथवा नई मेंबरशिप प्राप्त करने के लिए प्रेषित किया गया है।

यदि किसी प्रेमी पुरुष ने आत्म मार्ग मैगजीन के लिए चन्दा जमा करवाया हो और उसे मैगजीन न पहुँच पा रहा हो, तो उसे जमा करवाई गई रकम का रसीद नम्बर आदि लिखकर आत्म मार्ग कार्यालय से सम्पर्क करना चाहिए।

'आत्म मार्ग' एक धार्मिक मैगजीन है, इसके अन्तर्गत श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी की वाणी छपी हुई होती है, इसलिए समस्त पाठक बन्धुओं से अनुरोध है कि कृप्या इसका प्रयोग रद्दी पेपर की भांति न किया जाए। यदि आप पुराने मैगजीन को रखना नहीं चाहते हैं तो उन्हें हमारे किसी भी वितरण केन्द्र पर सहर्ष वापिस कर सकते हैं।

नाम सिमरन की विधि

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

सतिनामु श्री वाहिगुरू,
धंन श्री गुरू नानक देव जीओ महाराज!

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ॥
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ ॥
अंग - 256

फिरत फिरत प्रभ आइआ
परिआ तउ सरनाइ॥
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥
अंग - 289

धारना - खेले सुआमी मेरा निरगुन हो के,
सरगुन हो के।

सरगुन निरगुन निरंकार सुंन समाधी आपि ॥
आपन कीआ नानका आपे ही फिरि जापि ॥
अंग - 290

अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखनहारा ॥
नाना रूपु धरे बहु रंगी सभ ते रहै निआरा ॥
अंग - 537

कतहूं सुचेत हुइकै चेतना को चार कीओ,
कतहूं अचिंत हुइकै सोवत अचेत हो॥
कतहूं भिखारी हुइकै माँगत फिरत भीख,
कहूं महाँ दान हुइकै माँगिओ धन देत हो॥
कहूं महाराजन को दीजत अनंत दान,
कहूं महाराजन ते छीन छित लेत हो॥
कहूं बेद रीत, कहूं ता सिउ बिप्रीत,
कहूं त्रिगुन अतीत कहूं सुरगुन समेत हो॥
त्रप्रसादि कबि्त

साधु संगत जी! उच्च स्वर में बोलो, सतिनाम श्री वाहिगुरू। अपने-अपने व्यवसायिक कार्यों को विराम देते हुए आप सब गुरु दरबार में पहुँचे हो। गर्म हवा चल रही है और तेज धूप पड़ रही है लेकिन यह आप सब सहज तप कर रहे हो। दूसरी तरफ एक साधक धूप में बैठा हो, चारों तरफ चार धूनियाँ लगाई हुई हों, सूर्य की गर्मी अपनी पूरी ताकत के साथ पड़ रही हो और नीचे से धरती पूरी तरह से गर्म हो, उसका जो फल प्राप्त होता है वह बहुत नगण्य होता है, बस कहने मात्र के लिए होता है, बस उसकी भावना के अनुसार उसे फल मिल जाता है, लेकिन जहाँ तक सत्संग के फल की बात है तो महाराज जी ने कथन किया है कि जहाँ पर संगत एक मन व एक चित्त होकर हरियश कर रही हो, उस विचार को सुनकर जो अपने हृदय में धारण करता है और तत्पश्चात उसकी कमाई करता है एवं अपने जीवन को उसके अनुसार ढालता है अथवा यह इरादा करता है कि मैं गुरू जी के वचनों का पालन करूँगा तो फिर उसे बेशुमार फल मिल जाता है -

कई कोटिक जग फला सुणि गावनहारे राम ॥
अंग - 546

इसके अन्दर जो शर्त निहित है उसे गुरू जी ने एक अन्य स्थान पर खोलकर बतलाया है। गुरू जी कहते हैं कि गुरू के पास आते तो सभी हैं -

सेवक सिख पूजण सभि आवहि
सभि गावहि हरि हरि उतम बानी ॥
गाविआ सुणिआ तिन का हरि थाइ पावै
जिन सतिगुर की आगिआ सति सति करि मानी ॥
अंग - 669

आते तो सभी हैं और गाते भी सभी हैं लेकिन गुरू के लेखे में उन्हीं का पड़ पाता है जो कि गुरू की आज्ञा को सत्य करके मानते हैं यानि कि जो गुरू की आज्ञा का पालन करते हैं, उनका गाना व सुनना लेखे में पड़ जाता है, फिर उसका फल कितना मिलता है? गुरू जी का फुरमान है -

कई कोटिक जग फला सुणि गावनहारे राम ॥

चित्त वृत्तियों को एकाग्र करके जब हम हरियश करते हैं तो उसका फल करोड़ों यज्ञों के बराबर प्राप्त होता है क्योंकि नौ प्रकार की भक्तियों में कीर्तन शिरोमणि भक्ति है। गुरू जी का फुरमान है -

भगति नवै परकारा ॥ पंडितु वेदु पुकारा ॥
अंग - 71

नौ प्रकार की भक्तियों में सबसे प्रधान भक्ति, जिसका

फल कल्युग के अन्दर सर्वाधिक होता है और जिस फल को कोई न तो चुरा सकता है और न ही कोई घटा सकता है वह है - कीर्तन भक्ति। गुरू जी का फुरमान है -

कलि महि एहो पुंनु गुण गोविंद गाहि ॥

अंग - 962

कल्युग के अन्दर सर्वाधिक पुण्य गोबिन्द के गुण गाने का ही प्राप्त हुआ करता है -

कलजुग महि कीरतनु परधाना ॥
गुरमुखि जपीऐ लाइ धिआना ॥
आपि तरै सगले कुल तारे
हरि दरगह पति सिउ जाइदा ॥ ***अंग - 1076***

वह स्वयं भी अपना उद्धार कर लेता है और दरगाह में भी सम्मानपूर्वक चला जाता है। यह बात भी तथ्य परक है कि सत्संग आसानी से मिल नहीं पाया करता है। जिस प्रकार से पारस बहुत उत्तम चीज होती है, यदि पारस आठों धातुओं में से जिस किसी को भी स्पर्श कर जाए तो वह उसे सोना बना देती है। इसी प्रकार से गुरू जी फुरमान करते हैं कि -

हरि कीरति साधसंगति है सिरि करमन कै करमा ॥

अंग - 642

कल्युग के अन्दर व्यक्ति प्रतिदिन अपना रूप बदलता रहता है और प्रतिदिन तो बहुत दूर की बात है, वह इस पल कुछ और है तथा दूसरे पल कुछ और हो जाता है। इस घड़ी कुछ और है तथा दूसरी घड़ी कुछ और है। वही व्यक्ति सुबह गुरुद्वारा साहिब जाता है, मत्था टेकता है, वाणी पढ़ता है लेकिन उसी व्यक्ति को जब दफ्तर में जाकर मिलो तो वहाँ पर उसका रूप कुछ और होता है। वही व्यक्ति जब परिवार में आता है, तो वहाँ पर उसका रूप कुछ और होता है। जब वह आम लोगों के साथ बातचीत करता है तो वह कुछ अन्य प्रकार का होता है। वह क्यों बदलता है? दरअस्ल कल्युग के अन्दर समवृत्ति रख पाना बहुत ही मुश्किल बात है। यही कारण है कि इस युग के अन्दर परमात्मा ने मनुष्य के उद्धार का जो विधान स्थापित किया है, वह भी बाकमाल है। गुरू जी का फुरमान है कि यदि क्षणमात्र के लिए भी व्यक्ति का मन एकाग्र हो गया -

एक चित जिह इक छिन धिआइओ
काल फास के बीच न आइओ।

यदि व्यक्ति का चित्त एकाग्र हो जाए तो फिर करोड़ों व अरबों-खरबों गुणा उसका फल बढ़ जाता है। इसीलिए गुरू जी कहते हैं कि सत्संग एक दुर्लभ वस्तु है -

हरि कीरति साधसंगति है सिरि करमन कै करमा ॥

अंग - 642

साधू की संगत तथा हरियश कल्युग के समस्त कर्मों में से शिरोमणि कर्म है। पहले के तीन युगों में अन्य धर्म-कर्म भी फलदाई थे और आजकल भी फलदाई हैं लेकिन इनका फल नगण्य है, बहुत कम है। हम व्रत रखते हैं, तीर्थ जाते हैं, दान करते हैं लेकिन यदि मन में अहंकार आ जाए कि मैं जाता हूँ और ये लोग नहीं जाते हैं, इसलिए मैं तो इनसे कहीं अच्छा हूँ, तो फिर वह सारे धर्म-कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। यथा -

तीरथ बरत अरू दान करि मन मै धरै गुमानु ॥
नानक निहफलु जात तिह जिउ कुंचर इसनानु ॥

अंग - 1428

यदि मान लो वे शुभ कर्म बच भी जाएँ यानि कि हमारे पास जमा हो जाएँ तो महाराज जी कहते हैं कि प्रेमीजनो! कर्मकाण्ड वाला व्यक्ति जिस मार्ग पर जाता है, वह मार्ग यमदूतों वाला मार्ग है जबकि सन्तजनों का मार्ग इससे भिन्न है। सन्तजनों के मार्ग से तो यह मार्ग बहुत दूर रह जाता है। वैसे संसार के अन्दर जो लोग दान व पुण्य बोते हैं, उनका मार्ग यही है। गुरू जी कहते हैं कि पुण्य कर्म करने वाला व्यक्ति जब दरगाह को जाता है तो उस समय उसे टैक्स देना पड़ता है। जिस प्रकार से जब आप प्राइवेट सड़क पर यात्रा करते हो तो फिर तुम्हें उसका टैक्स देना पड़ता है। अमेरिका में चले जाओ, वहाँ पर अधिकांश प्राइवेट सड़कें हैं, इसलिए 40-50 मील की दूरी पर आपको टोल टैक्स देना पड़ेगा। टैक्स दो और आगे निकल जाओ। अपने देश में भी सरकार पुल बना देती है लेकिन उसके ऊपर टैक्स लगा देती है कि पुल की कीमत वहाँ से गुजरने वालों से निकालनी है। इस प्रकार थोड़ी-थोड़ी देर बाद टैक्स बैरियर आते रहते हैं, टैक्स देते जाओ और आगे निकलते जाओ। ठीक इसी प्रकार से यमदूतों के भी घाट हैं। जब एक घाट से दूसरे घाट को जाना हो तो जिस प्रकार से नाव के द्वारा नाला या नदी पार करने पर उसका किराया देना पड़ता है, उसी प्रकार से जीवात्मा को भी वहाँ पर किराया देना पड़ता है।

बहुत सारे मतों का ख्याल है क्योंकि गुरू महाराज जी ने पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है, जो कि उस समय प्रचलित थी। अब जो व्याख्या तत्कालीन विद्वानों ने की हुई थी, उसके ऊपर आपने कोई भी 'किन्तु' नहीं किया। आप कहते हैं कि ठीक है, हमने आपकी बात मान ली कि परलोक गमन के समय आत्मा के मार्ग में 21 पुरियाँ आती हैं। पुण्य और दान करने वाली रूहें एक ही मार्ग पर से गुजरती हैं, अत: उनकी मार्ग में 21 घाट आते हैं और उन्हें 21 ही जगहों पर जागात (टैक्स) देना पड़ता है। वह टैक्स इतना अधिक होता है कि जो जीवात्मा ने अपने जीवन में

पुण्य और दान किए होते हैं, पहले तो वे फल ही कम देते हैं क्योंकि हम लोगों के मन में होता है मेरी सामूहिक अरदास करो ताकि सबको पता चल जाए कि मैंने दान किया है, उससे भी मूर्ख वे लोग हैं जो कहते हैं कि मेरे नाम का पत्थर लगा दो ताकि लोग देखें कि इसने इतने हजार या इतने लाख रुपए दान किए हैं। इस प्रकार से पुण्य का फल थोड़ा-बहुत ही शेष रह जाता है। तीन प्रकार के पुण्य होते हैं, सांतकी पुण्य, राजसी पुण्य और तामसी पुण्य। अब सांतकी पुण्य तो कोई करता नहीं है। ज्यादातर लोग तामसी पुण्य ही करते हैं। इस प्रकार से उनमें जो थोड़ा बहुत फल बच जाता है, उसे यमदूत टैक्स के रूप में ले लेते हैं और दरगाह तक जाते-जाते वह पूरी तरह से खाली हो जाता है। गुरू जी फुरमान करते हैं -

करम धरम पाखंड जो दीसहि
तिन जमु जागाती लूटै ॥
निरबाण कीरतनु गावहु करते का
निमख सिमरत जितु छूटै ॥
संतहु सागरू पारि उतरीऐ ॥
जे को बचनु कमावै संतन का
सो गुर परसादी तरीऐ ॥ *अंग - 747*

अतः जो हरियश किया हुआ होता है, प्रभु जी का ध्यान किया हुआ होता है, नाम सिमरन किया हुआ होता है, तो वहाँ पर यह सब मददगार होते हैं, जहाँ पर कि सारे कर्म-धर्म समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार से पढ़ लो -

धारना - पिआरे जी, जिथे ना कोई मात पिता,
उथे नाम ने सहाइता करनी।

जह मात पिता सुत मीत न भाई ॥
मन उहा नामु तेरै संगि सहाई ॥
जह महा भइआन दूत जम दलै ॥
तहि केवल नामु संगि तेरै चलै ॥
जह मुसकल होवै अति भारी ॥
हरि को नामु खिन माहि उधारी ॥ *अंग - 264*

फिर रास्ता बदल जाता है, बैरियर आ जाता है, फिर उससे भी कठिन रास्ता आ जाता है -

जिह मारग के गने जाहि न कोसा ॥
हरि का नामु उहा संगि तोसा ॥
जिह पैडै महा अंध गुबारा ॥
हरि का नामु संगि उजीआरा ॥
जहा पंथि तेरा को न सिञानू ॥
हरि का नामु तह नालि पछानू ॥
जह महा भइआन तपति बहु घाम ॥
तह हरि के नाम की तुम उपरि छाम ॥
जहा त्रिखा मन तुझु आकरखै ॥
तह नानक हरि हरि अंम्रितु बरखै ॥ ४ ॥

अंग - 264

इस प्रकार से वहाँ पर सत्संग का जो फल है, वह बहुत अधिक सहायता करता है। अतः मैंने विनती की थी कि आज धूप बहुत अधिक है, गर्म हवा चलने लगी हुई है, इसलिए ऐसे वातावरण में सत्संग का फल बहुत अधिक प्राप्त होता है। चित्त वृत्तियों को एकाग्र करके, ध्यानपूर्वक श्रवण करना और फिर उसे मन में धारण करना और उसके बाद अपने जीवन को उसी प्रकार से बनाना, इसका फल असीम होता है। अब इसमें हमारी कमजोरी यहाँ पर रह जाती है कि हम सुनते भी हैं, समझते भी हैं, लेकिन उस पर अमल नहीं करते हैं। यहाँ पर सन् 1984 में सत्संग शुरू हुआ था, बहुत कुछ बोला गया, बहुत कुछ सुना गया, बहुत कुछ समझा गया है। इसके बाद सबके जीवन में बहुत परिवर्तन भी आया है। चूँकि परिवर्तन धीरे-धीरे आया है, इसलिए उसका पता नहीं लग पाया करता है। कुछ अलग प्रकार का परिवर्तन अवश्य ही आया है, सबके जीवन में कुछ न कुछ अच्छा अवश्य हुआ है, सुगन्ध अवश्य आई है, किसी में अधिक आई है और किसी में कम आई है। अब वह सुगन्ध धीरे-धीरे आई है, इसलिए उसका पता नहीं लगता है। जैसे-जैसे समय बीत रहा है, पता नहीं लग रहा है। वैसे परिवर्तन के बारे में दूसरों को पता चला करता है। जो पाँच वर्ष बाद मिलता है, वह कहता है कि तुम तो बहुत कमजोर हो गए हो, लेकिन उसे स्वयं को पता नहीं चलता है।

अतः संगत के ऊपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। कमी जिस जगह पर रह जाती है, वह यह है कि जो वचन कहे जाते हैं, उनके अनुसार इतनी दृढ़ता नहीं आती है कि उन्हें मान लिया जाए। यहाँ पर आकर रुकावट पड़ जाती है। हम सहमत तो हो जाते हैं, लेकिन हम उन कदमों को आगे नहीं बढ़ा पाते हैं जिसके द्वारा हम कहे गए वचनों के अनुसार अपने जीवन को चला नहीं पाते हैं या उन वचनों का पालन नहीं कर पाते हैं। इसका कारण यह है कि हमारा वास्ता हमेशा बाह्य संसार के साथ पड़ता है, दुनिया को मिलते-जुलते हैं सारी सृष्टि एक शीशे पर आ गई है जिसे कि टैलीविजन कहते हैं, सारी दुनिया के ख्याल उसमें आ गए। वे बिना चाहते हुए ही हमारे मन पर प्रभाव डालते चले जाते हैं और जो कार्य हम करना चाहते थे, उसे वे निरन्तर दबाते चले जाते हैं। सात दिनों के बाद हम सत्संग में आते हैं, वहाँ पर आकर हमारे अन्दर पुनः उत्साह जागृत होता है लेकिन पुनः हमारा मुकाबिला बाह्य संसार से पड़ता है। शुरू-शुरू में तो उन चीजों का बहुत

प्रभाव होता है लेकिन बाद में जब हमें नाम का रस आने लग जाता है तो फिर बाहरी चीजों का प्रभाव कम होता चला जाता है।

इस प्रकार से जो हमारा असली मनोरथ है, संसार पर आने का, उसे गुरू जी बार-बार दोहराते हैं। वे रोज कहते हैं कि तुम नित्तनेम करो, रोज गुरवाणी पढ़ो। दूसरी तरफ रोज पढ़ने का एक बहुत बड़ा दोष भी है। दोष यह है कि इससे व्यक्ति immune हो जाता है। हमारा जो मन है, वह पहले ही सोच लेता है कि अब गुरू जी यह कहेंगे कि -

भई परापति मानुख देहुरीआ ॥
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥ अंग - 12

वह पहले ही जानता है कि अब इस प्रकार से कहेंगे। वह immune हो जाता है और उसके ऊपर गहरा ध्यान नहीं देता है, बात को अपने अन्दर नहीं लेकर जाता है। वह बात का अनुसरण नहीं करता है। हमारे मन का दृष्टिकोण ही ऐसा बन जाता है कि हम उधर ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं। दूसरी तरफ गुरू जी तो रोज याद करवाते हैं। कई लोग कहते हैं कि हमने तो कितनी बार सुन लिया है कि 'भई परापति मानुख देहुरीआ' इसे रोज-रोज दोहराने की क्या जरूरत है?

यह तो ठीक है कि तुमने सुन लिया है लेकिन वह इरादे वाले कक्ष में नहीं गया बल्कि याददाश्त की तहों में चला गया है। जब तक वह इरादे वाले कक्ष में नहीं आता है, तब तक वह दृढ़ इरादा नहीं करता है और तब तक उसे वास्तव में पता नहीं चल पाता है कि -

भई परापति मानुख देहुरीआ ॥
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥ अंग - 12

इस प्रकार से पढ़ लो -

धारना - इहो तेरी वारी है, गोबिंद मिलणे की।

बिल्कुल सीधी पंक्तियाँ हैं जिन्हें अनपढ़ व सीधा व्यक्ति भी सही तरीके से समझ लेता है कि अब परमात्मा को मिलने की तुम्हारी बारी आ गई है।

अवरि काज तेरै कितै न काम ॥ अंग - 12

अगला आदेश पुनः आ गया। प्रेमीपुरुष! तुम काम-काज का बहाना लगाते हो कि हम काम-काज में व्यस्त रहते हैं तो नाम का सिमरन कब करें?

मेरे पास विशेष रूप से महिलाएँ आती हैं। जब मैं उनसे कहता हूँ कि इतने पाठ कर लो तुम स्वस्थ हो जाओगे। वे कहेंगी जी बच्चों की देखभाल करनी पड़ती है, हम पाठ कब करें? फलां काम है। मैं कहता हूँ कि चलो फिर सेवा कर लिया करो। फिर वे कहेंगी कि वहाँ पर आना जाना मुश्किल है, दूर पड़ता है। जब जाओगे नहीं तो फिर काम कैसे होगा? गुरू जी ने तो पहले ही कह दिया है कि तुमने कामों का बहाना लगाना है और फिर जिन कामों का तुम हवाला दे रहे हो, उन्होंने तो कुछ भी नहीं संवारना है। असली काम क्या है -

मिलु साधसंगति भजु केवल नाम ॥ अंग - 12

साधू की संगत में जाकर नाम का जप करो, न कि वहाँ जाकर इधर-उधर की बातों में अपना समय बरबाद करो।

सरंजामि लागु भवजल तरन कै ॥ अंग - 12

जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआ कै ॥ अंग - 12

बाल बच्चों के, जमीनों-जायदादों के, पदवियों के चक्रव्यूह में समय व्यर्थ जा रहा है। नित्य प्रतिदिन समय व्यतीत होता जा रहा है, जो समय बीत गया वह दोबारा हाथ में आने वाला नहीं है। गुरू जी कहते हैं कि यदि तुम इरादा बना सकते हो तो अभी इसी समय से दृढ़ इरादा बना लो -

धारना - निसदिन महि प्रानी,
चेतना है तउ चेत लै।

चेतना है तउ चेत लै निसि दिनि मै प्रानी ॥
छिनु छिनु अउध बिहातु है फूटै घट जिउ पानी ॥ 1 ॥ रहाउ ॥
हरि गुन काहि न गावही मूरख अगिआना ॥
झूठै लालचि लागि कै नहि मरनु पछाना ॥ 1 ॥
अजहू कछु बिगरिओ नही जो प्रभ गुन गावै ॥
कहु नानक तिह भजन ते निरभै पदु पावै ॥2॥1॥
अंग - 726

महाराज पुनः याद करवाते हुए कहते हैं कि तुम दृढ़ इरादा बना लो क्योंकि बीत गया समय वापिस आने वाला नहीं है। बीत गए समय का तो फिर पाश्चाताप ही पल्ले रह जाता है कि बहुत लम्बा समय या बहुत लम्बी उम्र मैंने यूँ ही गंवा दी -

बैर बिरोध काम क्रोध मोह ॥
झूठ बिकार महा लोभ ध्रोह ॥
इआहू जुगति बिहाने कई जनम ॥
नानक राखि लेहु आपन करि करम ॥ अंग - 268

इस प्रकार से जो हमारा असली जीवन मनोरथ है यदि उसके ऊपर हमारा मन मान जाए तो फिर हमारा जीवन सफल हो सकता है क्योंकि मन के साथ ही सारा सम्बन्ध है -

ममा मन सिउ काजु है मन साधे सिधि होइ ॥
मन ही मन सिउ कहै कबीरा

मन सा मिलिआ न कोइ ॥ अंग - 342

यदि मन ही साथ नहीं दे रहा है फिर तो बहुत ही मुश्किल की बात है। यदि मन मान गया और साथ में सहमत हो गया तो फिर बात बन जाती है। गुरू जी कहते हैं कि फिर तो बहुत बड़ी से बड़ी पदवी प्राप्त हो जाती है -

धारना - पावे मोख दुआर,
जे मन मंन जाए - 2

साधु संगत जी! हमारा सारा सम्बन्ध मन के साथ ही है। यदि मन मान जाए फिर तो यह हमारा मित्र है और यदि न माने तो वह किसी के भी काबू में नहीं आया करता है। गुरू कृपा कर दे, शब्द का बल हो तो फिर मन मान जाया करता है। यदि मन मान जाए तो फिर वांछित प्राप्ति हो जाया करती है। पूर्ण वैराग्य भी जरूरी है क्योंकि वैराग्य के द्वारा मन मानता है -

मंनै पावहि मोखु दुआरू ॥
मंनै परवारै साधारू ॥ अंग - 3

पिछले दीवान में विनती की थी कि एक लाहौर का नवयुवक, जो कि पढ़ा लिखा व विद्वान है, वेद शास्त्रों का ज्ञाता है और साथ में ही हिकमत भी अच्छी जानता है, स्वभाव से सुशील है और सारा परिवार आज्ञाकारी है, उसके दो पुत्र हैं और पत्नी है, धन दौलत की कोई कमी नहीं है, सांसारिक सुविधाओं की बहुलता है और वह साधुओं की संगत भी करता है लेकिन मन शान्त नहीं हो पा रहा है। वैसे वह ईमानदार है, वह देखता है कि वह चीज तो मुझे प्राप्त नहीं हुई है, जिसका जिक्र महापुरुष अपने व्याख्यानों में करते हैं यानि कि परमानन्द की अवस्था तो अभी मिली नहीं है। मेरे मन में तो अभी भूख लगी हुई है, वहाँ पर तो खालीपन है, वह खालीपन कैसे भरेगा?

गुरू दसवें महाराज के पास जाने वाला एक कवि अमृतराए उसकी जान पहचान वाला है, उसके पास वह बात करता है। उसने कहा देखो भद्रपुरुष! यह बात ठीक है कि तुम साधन करते हो लेकिन जब तक तुम किसी समर्थ गुरू की शरण में नहीं जाते हो, तब तक बात बन ही नहीं पाएगी। उसने सारा बताया कि मैं राजयोग करता हूँ जिसके बारे में पिछले दीवान में सविस्तार चर्चा की गई है कि राजयोग क्या होता है, उसके नियमों का किस प्रकार से पालन करना पड़ता है? आसन व प्राणायाम कैसे होते हैं, पूरक, रेचक व कुम्भक कैसे किया जाता है? धारना, ध्यान व समाधि कैसे होती है?

यदि मन अढ़ाई सैकेंड के लिए टिक जाए तो उसे धारणा कहते हैं यदि बारह धारनाएँ यानि कि आधा मिनट मन टिक जाए तो एक पूरी धारणा बन जाती है, इस प्रकार कोशिश करते-करते जब बारह पूरी धारणाएँ हो जाएँ यानि कि अढ़ाई मिनट तक ध्यान लगना शुरू हो जाए तो एक ध्यान बन जाता है और जब 30 ध्यान इकट्ठे हो जाएं तो उसे एक समाधि कहते हैं। चाहे वह ध्यान साकार का कर रहा है, चाहे शब्द का कर रहा है, चाहे कोई जप कर रहा है, बस 75 मिनट तक मन कहीं भी न जाए तो वह समाधि कहलाती है। इसी प्रकार जब तीन घंटे तक मन स्थिर रहे तो वह पूरी समाधि कहलाती है। इसमें भी एक समाधि वह होती है जिसमें कि अपना ज्ञान रहता है, सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। दूसरी समाधि वह होती है जिसमें कि ध्येय नहीं होता है, सब लीन हो जाता है, शब्द में लीन हो जाता है, संसार का भी कोई ध्यान नहीं रहता है। केवल ध्येय ही शेष रह जाता है। इसके आगे राजमेघ समाधि हुआ करती है, वह निरन्तर लगी रहती है।

वह कहने लगा कि मैं समाधि के पार तक पहुँचा हुआ हूँ लेकिन मन नहीं लगता है। वे कहने लगे भद्रपुरुष! मन तो गुरू के प्रेम में ही लगेगा। वैसे यदि हम देखें तो वह बहुत ही मेहनतकश इन्सान था और हम लोगों की अपेक्षा तो हजारों गुणा अच्छा था। हमें तो इस बात का पता ही नहीं है कि हमारा मन नहीं लगता है। जो प्रेमीपुरुष आकर यह कह देते हैं कि जी! मेरा मन नहीं लगता है तो मैं उन्हें कहा करता हूँ कि तुमने तो बहुत तरक्की कर ली है क्योंकि जिसे यह पता चल जाए कि मेरा मन नहीं लगता है, समझ लो कि वह मन के पीछे पड़ गया है और धीरे-धीरे उसका मन लग ही जाएगा। उसके लिए महापुरुषों के पास कई प्रकार की युक्तियाँ होती हैं -

कबीर सेवा कउ दुइ भले एकु संतु इकु रामु ॥
रामु जु दाता मुकति को संतु जपावै नामु ॥
अंग - 1373

उसकी पदवी के बारे में महाराज जी फुरमान करते हैं कि प्रेमीजनो! वह तो बड़े से भी बड़ा है -

जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुरसिख की
जो आपि जपै अवरह नामु जपावै ॥ 2 ॥
अंग - 306

नाम जपाने वाला, नाम की महिमा करने वाला, नाम के साथ जोड़ने वाला तो इतनी बड़ी पदवी का मालिक है कि हम उसके चरणों की धूल मांगते हैं, यह कोई अतिश्योक्ति नहीं है बल्कि यह तो वाहिगुरू जी द्वारा भेजी गई एक आवाज है। अध्यात्मवाद का यह एक नियम है कि उसकी अवस्था इतनी ऊँची हो जाती है जो नाम जपता व जपाता है। अतः वह कहने लगा कि भद्रपुरुष! तुम्हें गुरू की शरण

में जाना पड़ेगा क्योंकि हमारे अन्दर एक आधारभूत दोष है। दोष यह है कि जिस प्रकार से पारा एक जगह पर टिकता नहीं है, उसी प्रकार से हमारी सुरति एक जगह पर टिकती नहीं है लेकिन यदि पारे को औषधि का प्रयोग कर उसे मार लिया जाए तो फिर वह हिलता नहीं है, इसी प्रकार से गुरू की शरण में जाने के बिना यह सुरति एक जगह पर टिकती नहीं है।

उदाहरण के तौर पर नौ दरवाजों वाला एक घर है, उस घर के बीच एक कमरा जिसमें सुखों के साधन बेशुमार हैं और कोई एक पक्षी उस घर के बीच वाले हिस्से में रहता है लेकिन वह एक दिन उस घर में से बाहर निकल गया, बाहर निकलने के बाद उसने नौ दरवाजों के बीच से भागना शुरू कर दिया। अब वह यह भूल ही गया है कि मेरा घर कौन सा था।

शहद की मक्खियाँ सुबह के समय बाहर गई हुई थीं। डिब्बे का मुँह अब दूसरी तरफ कर दो कोई भी मक्खी उसके अन्दर प्रवेश नहीं करेगी। वे इतनी जल्दी भूल जाती हैं कि उनका घर कौन सा था। यदि उनके डिब्बे को उठाकर दो डिब्बों की दूरी पर रख दो तो भी उन्हें पता नहीं चल पाता है कि उनका घर किस डिब्बे में था। फिर वे वहीं पर घूमती रहेंगी लेकिन डिब्बे के अन्दर प्रवेश नहीं करेंगी। सयाना व्यक्ति जान जाता है कि ये अपने घर को भूल गई हैं।

ठीक इसी प्रकार से हमारा जो मन रूपी पक्षी है, यह अपने घर से बाहर निकल गया है। वह घर बहुत ही सुन्दर था। गुरू जी उस घर को 'सोघर' या निजघर कहते हैं -

सभि सखीआ पंचे मिले गुरमुखि निज घरि वासु ॥
सबदु खोजि इहु घरू लहै नानकु ता का दासु ॥

अंग - *1291*

जहाँ पर आत्म वस्तु थी, जहाँ पर अमृत का सरोवर था, आत्म तीर्थ था और जहाँ पर सुख ही सुख था, जिस घर की खूबियों को ब्यान कर पाना ही कठिन है, जिस घर में नौ निधियाँ व अट्ठारह सिद्धियाँ थीं, उस घर को यह भूल गया है -

गुरदुआरै लाइ भावनी
इकना दसवा दुआरू दिखाइआ ॥
तह अनेक रूप नाउ नव निधि
तिस दा अंतु न जाई पाइआ ॥ ***अंग -*** *922*

वह घर हमारे अन्दर है, लेकिन बाहर की ओर ख्याल होने के कारण रुचि बहिर्मुखी हो गई है। दरअस्ल सारे दरवाजे बाहर की ओर ही खुलते हैं और बाहर की ओर खुलने के कारण इसे पता नहीं चल पाता है। श्री गुरू जी इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

नउ दरवाजे काइआ कोटु है दसवै गुपतु रखीजै ॥ बजर कपाट न खुलनी गुर सबदि खुलीजै ॥
अनहद वाजे धुनि वजदे गुर सबदि सुणीजै ॥
तितु घट अंतरि चानणा करि भगति मिलीजै ॥
सभ महि एकु वरतदा जिनि आपे रचन रचाई ॥

अंग - *954*

वाहु वाहु सचे पातिसाह तू सची नाई ॥ अंग - *947*

गुरू जी फुरमान करते हैं कि ऐ प्रेमीजन! तुम जिस घर को भूले हुए हो वह तो तुम्हारे अन्दर है -

नउ दरवाजे काइआ कोटु है दसवै गुपतु रखीजै॥
बजर कपाट न खुलनी...॥

तुम जैसे ही बाहर निकले वे दरवाजे बन्द हो गए, अब वे किसी भी तरीके से खुलते नहीं हैं। लेकिन जब सिक्ख गुरू के पास जाता है, तो गुरू कहता है कि मैं तुम्हें शब्द देता हूँ, उसका जप करो, दरवाजे स्वतः ही खुल जाएँगे।

इसके प्रतीकात्मक रूप में एक कहानी बनी हुई है। वे कहते हैं कि एक जगह चालीस चोर थे और उनका सरदार था - अली बाबा। पर्वत के अन्दर एक गुफा थी, जिसे मन्त्र बल के द्वारा दरवाजे लगाए हुए थे। जब सरदार कहता कि सिम-सिम दरवाजा बन्द हो जा तो वह दरवाजा बन्द हो जाता और जब वह कहता कि सिम-सिम दरवाजा खुल जा तो वह दरवाजा खुल जाता था, यानि कि वह उस शब्द या मन्त्र के द्वारा खुल जाया करता था। उस गुफा के अन्दर बेशुमार दौलत पड़ी थी। हीरे-जवाहरातों का उसके अन्दर अपार भण्डार था। यथा -

गुरदुआरै लाइ भावनी इकना दसवा दुआरू दिखाइआ ॥ तह अनेक रूप नाउ नव निधि तिस दा अंतु न जाई पाइआ ॥

वहाँ की अमीरी और वहाँ की बातों का कुछ पता नहीं चलता था। अतः यह एक प्रतीकात्मक कहानी है जिसे कि किसी सयाने व्यक्ति ने बनाया है क्योंकि ये आन्तरिक बातें होती हैं, जब तक इन्हें किसी प्रतीक के द्वारा अथवा कोई चित्र बनाकर समझाया न जाए तब तक ये बातें किसी को समझ में नहीं आया करती हैं।

इस प्रकार से यह दरवाजा बन्द हुआ पड़ा है। गुरू जी कहते हैं कि भद्रपुरुष! यह दरवाजा तभी खुल पाएगा जबकि समर्थ गुरू शब्द दे दे और फिर उस शब्द की यह व्यक्ति कमाई कर ले तो फिर यह दरवाजा स्वतः ही खुल जाएगा।

जब यह दरवाजा खुल जाता है तो फिर इसके अन्दर बहुत विचित्र चीजें दिखाई पड़ती हैं, वहाँ पर अनहद बाजे, जो कि बिना बजाए बजते हैं, सुनाई पड़ते हैं। आत्मिक संगीत की अनेकों धुनें वहाँ पर बज रही हैं और वहाँ पर 'गुर सबदि सुणीजै।।' यहाँ पर विवाद पैदा हो जाता है कि पहले भी गुरू शब्द है और अब भी गुरू शब्द है। साधु संगत जी! एक शब्द वह है जिसके बारे में दशमेश पिता जी तथा भाई गुरदास जी खोलकर बताते हैं -

कीता पसाउ एको कवाउ ॥
तिस ते होए लख दरीआउ ॥ ***अंग - 3***

एक शब्द हुआ था जिसने जीवन की करोड़ों ही धाराएँ बही दीं। ऐसा नहीं हुआ कि वह जीवन धीरे-धीरे आगे बढ़ा बल्कि चारों तरफ एकदम से ही प्रगति होनी शुरू हो गई। वह प्रगति शब्द में से ही हुई। इससे भी आगे स्पष्ट करते हुए गुरू जी कथन करते हैं कि -

प्रथम ओअंकार तिन कहा सो धुन पूर जगत मो रहा।

वह धुन जो है वह सारे संसार में अब भी व्याप्त है, वह शब्द प्रत्येक के अन्दर सुनाई पड़ता है। व्यक्ति कहता है कि मेरे अन्दर तो सुनाई नहीं पड़ता है? यदि वह शब्द विद्यमान हो तो फिर वह मेरे अन्दर भी तो सुनाई पड़े? महाराज जी कहते हैं कि भद्रपुरुष! तुम्हें इसलिए सुनाई नहीं पड़ता है कि तुम्हें बेहोशी का टीका लग गया है। इस बेहोशी के टीके के कारण ही तुम्हें शब्द नहीं सुनाई पड़ता है। तुम नामधारी ने होकर मायाधारी हो गए हो। नामधारी होने से क्या होता है? नामधारी होने से फिर शब्द भी सुनता है और आन्तरिक प्रकाश भी दिखाई पड़ता है। दूसरी तरफ मायाधारी होने से क्या होता है? गुरू जी कहते हैं -

माइआधारी अति अंना बोला ॥
सबदु न सुणई बहु रोल घचोला ॥ ***अंग - 313***

आखिरी हद तक यह व्यक्ति अन्धा और बहरा हो गया है। इसे आन्तरिक शब्द सुनाई ही नहीं पड़ता है, जबकि वह धुन इस व्यक्ति के अन्दर प्रत्येक समय चलती रहती है -

निरंकारू आकारू होइ एकंकारू अपार सदाइआ।
एकंकारहु सबद धुनि एअंकार अकारू बणाइआ।
भाई गुरदास जी, वार 26/2

पारावार से रहित एकंकार, सगुण स्वरूप होकर एकंकार के रूप में प्रकट हुआ, क्रियाशील होकर वह कर्ता बना। वह प्रत्येक जगह पर हाजिर बना, पुरुष बना। कहते हैं कि पहले क्या चीज हुई? पहले शब्द धुन हुई। अब उस शब्द धुन का कोई न कोई नाम तो रखना ही था, जैसे कि हम लोगों ने 'ऐकंकार' उसका नाम रख दिया है। अंग्रेजी भाषा वाले कुछ और नाम रख लेंगे तथा अरबी भाषा वाले कुछ और रख लेंगे। हस्ती तो वही होती है, बस नाम में ही फर्क होता है। वास्तव में तो चीज वही होती है। एक गेहूँ कह देता है, दूसरा कणक कह देता है, कोई गन्धम कह देता है लेकिन चीज तो एक ही है। इसी प्रकार से कोई वाटरमैलन कहता है, कोई तरबूज कहता है, कोई मतीरा कह देता है, जबकि चीज तो एक ही है। बस उसके नाम कई होते हैं। इसी प्रकार से इसका नाम 'ऐकंकार' रखा गया। 'ऐकंकार' से फिर शब्द धुन हुई। शब्द धुन का नाम रखा 'ओअंकार' यानि कि ओ३म की धुन हुई। महाराज जी ने इसे ब्रैकेट कर दिया। आप ने कहा अन्यथा ये एकंकार और ओअंकार दो बन जाएँगे। इसका कारण क्या है? ब्रैकेट का कारण यह है कि वह शब्द परमात्मा से पृथक नहीं है। संसार की उत्पत्ति से पहले भी शब्द था यानि कि वह वाहिगुरू था। उसे किसी भी प्रकार से पृथक नहीं किया जा सकता है, बल्कि वह एकरूप ही है। महाराज जी ने ब्रैकेट करके एक ओंकार कर दिया। गुरू जी कहते हैं कि शब्द धुन और ओअंकार को अलग अलग बनाकर ही कहीं ध्यान न लगाने लग जाना क्योंकि वह तो एक ही है। महाराज जी कहते हैं कि 'प्रथम ओअंकार तिन कहा सो धुन पूर जगत में रहा' वह धुन व्यक्ति के अन्दर सुनाई पड़ती है -

अनहद वाजे धुनि वजदे गुर सबदि सुणीजै ॥

उस धुन के अन्दर जो ध्यान लगाता है -

धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ
गुरमुखि अकथ कहानी ॥ ***अंग - 879***

तो फिर वहाँ पर अन्धकार नहीं है बल्कि प्रकाश ही प्रकाश है। वहाँ पर हमारे ये नेत्र काम नहीं करते हैं ये तो बन्द हुए हैं, इन्हें तो दिखाई ही नहीं पड़ता है। कान भी बन्द हैं, कानों को भी सुनाई नहीं पड़ता है। जब ये सारे शत-प्रतिशत बन्द हो जाएँ तभी आन्तरिक नाद सुनाई पड़ा करता है।

बहुत सारे सम्प्रदाय ऐसे हैं जो कि ये कोशिश करते हैं कि बाहरी सारे आँखों कानों को बन्द कर लें। कई साधक तो कानों के अन्दर मोम डालकर उन्हें बन्द कर लेते हैं, ताकि उन्हें बाहरी कोई भी बात सुनाई न पड़े। कई लोग अपने अंगूठे के द्वारा अपने कानों को बन्द कर लेते हैं, आँखों को अंगुलियों के द्वारा बन्द कर लेते हैं, श्वासों को सबसे छोटी अंगुली (कनिष्ठ का) के द्वारा बन्द कर लेते हैं। इस सबसे उनका प्रयोजन यही होता है कि इन सबको बन्द कर लेने के बाद उन्हें आन्तरिक आवाज सुनाई देने लग पड़ेगी -

मूंदि लीओ दरवाजे ॥ बाजीअले अनहद बाजे ॥
अंग - 656

वह धुन है और धुन में ध्यान होता है -

अनहद वाजे धुनि वजदे गुर सबदि सुणीजै ॥

फिर क्या होता है? फिर आन्तरिक आँख खुल जाती है जिसे कि दिव्य चक्षु कहते हैं। कई लोग इन्हें शिवनेत्र भी कहते हैं। सबने अपने-अपने नाम रखे हुए हैं जबकि वास्तव में बात एक ही है। जब आन्तरिक नेत्र खुल जाते हैं तो निःशंक रूप से वह बाहर भी देखता है लेकिन उसे अन्दर भी दिखाई देने लग पड़ता है। वे नेत्र अलग प्रकार के होते हैं। उनके बारे में कह पाना भी अत्यन्त कठिन है। वहाँ पर तो प्रकाश ही प्रकाश होता है। हम लोगों को तो आँखें बन्द करने से अन्धकार लगता है लेकिन जिनके आन्तरिक चक्षु खुल जाते हैं तो उन्हें प्रकाश ही प्रकाश दिखाई पड़ता है -

तितु घट अंतरि चानणा करि भगति मिलीजै ॥

फिर वह उसके द्वारा देखता है। यदि कहीं अधिक गहरा चला जाए तो फिर उसे पता चल जाता है कि दस साल के बाद क्या होने वाला है।

श्री गुरू नानक महाराज जी ऐमनाबाद में हैं, मरदाना भोजन वगैरह लेने के लिए जाता है। आपके साथ में एक दो साधू और भी हैं। जब वे भोजन वगैरह लेने जा रहे हैं, तो वहाँ पर उनका बहुत अधिक अपमान किया गया। मरदाना जी को धक्का देकर उन्होंने कीचड़ में गिरा दिया। वह बहुत अधिक निराश हो गया और गुरू जी के पास लौट आया। वह कहने लगा महाराज जी! यहाँ के लोगों को तो पता ही नहीं है कि साधू-सन्त का सम्मान किस प्रकार किया जाता है इसलिए हमें यहाँ से प्रस्थान कर जाना चाहिए। महाराज जी ने अन्तर्ध्यान होकर जब देखा तो आप कहने लगे, मरदाना! वाणी आ रही है। महाराज जी ने तेरह साल बाद घटित होने वाली घटना को खींचकर वर्तमान में लाकर खड़ा कर दिया। आपने फुरमान किया -

जैसी मै आवै खसम की बाणी
तैसड़ा करी गिआनु वे लालो ॥ *अंग - 722*

आप कहने लगे, उस भयावह समय ने तेरह वर्ष बाद आ जाना है और उसने आकर लूटमार का आंतक मचा देना है और राजभाग इनसे छीन लेना है -

काइआ कपड़ु टुकु टुकु होसी
हिदुसतानु समालसी बोला ॥
आवनि अठतरै जानि सतानवै
होरू भी उठसी मरद का चेला ॥ *अंग - 723*

जो हमने आज कहा है, यह सब तेरह साल बाद घटित होगा। ये लोग अब गलत कर रहे हैं। इस प्रकार की हजारों मिसालें हमें प्राप्त होती हैं।

माता जीतो जी बन्दगी कर रहे हैं, करते-करते उन्हें भविष्य दिखाई देना शुरू हो गया, यानि कि उन्हें आने वाला समय दिखाई देने लग पड़ा। जब उन्होंने पुनः नेत्र बन्द किए तो उन्हें पुनः वही दिखाई देने लगा और बार-बार वही सब दिखाई देने लगता। इसके बाद आप ब्रह्ममुहुर्त में ही गुरू जी के पास आ गए। महाराज जी कहने लगे, क्या हुआ? आज आप इस समय आए हो?

माता जी कहने लगे, सच्चे पातशाह जी! मुझे इस प्रकार से सारी बातें दिखाई पड़ रही हैं।

महाराज जी कहने लगे, हाँ यह सारा समय आने वाला है, श्री आनन्दपुर साहिब छूट जाएगा, हम लोगों को प्यार करने वाले सारे के सारे सिक्ख हमारे लिए अपने प्राणों की बाजी लगा जाएंगे और केवल तीन ही सिक्ख शेष रह जाएंगे। साहिबजादे भी मानवता के इस महान यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति डाल जाएंगे।

माता जी कहने लगे, महाराज जी! यह सब तो मैंने बहुत ही भयावह तस्वीर देखी है।

महाराज जी बोले, हाँ यह सब ऐसे ही होगा। माता जी बोले, महाराज जी! मैंने छोटे-छोटे साहिबजादों को दीवारों की नीवों में चिनते देखा है?

महाराज जी बोले, यह सब ऐसे ही होगा। माता जी कहने लगे, इन सबको बाहर कहीं अन्यत्र भेज दीजिए, इन्हें काबुल, कान्धार भेज दो ताकि इनके राजभाग से ये दूर चल जाएँ अथवा इन्हें दक्षिण के किसी राज्य में भिजवा दो क्योंकि वे राज्य स्वतन्त्र हैं, येन-केन-प्रकारेण इन बच्चों को बचा लीजिए?

महाराज जी कहने लगे, भाग्यवान! यह सब होना ही ऐसे है, तो फिर बचाने का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है।

आप अपनी सुरति को कुछ और आगे ले जाओ। जब माता जी ने नाम अभ्यास के बल से अपनी सुरति के अन्दर और आगे जाकर देखा तो क्या देखते हैं कि दरगाह के अन्दर उनकी जय-जयकार हो रही है, उन्हें बेतहाशा सम्मान मिल रहा है तथा परम पदवी प्राप्त हो रही है। गुरू जी कहने लगे कि इतनी बड़ी पदवियाँ इन्हें प्राप्त होनी हैं और फिर संसार पर से तो फिर भी जाना ही है। वार्ता का तात्पर्य है कि नाम

(शेष पृष्ठ 31 पर)

बाबाणियाँ कहानियाँ

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अगस्त, पृष्ठ - 22)

आज उसने अपने प्रश्न का समाधान इस बाल ऋषि से करवाने के लिए दरबार लगाया। भारत वर्ष के सारे ऋषि मुनि जो पिछले 7-8 सालों से एक प्रकार से नज़र बन्दियों जैसा जीवन बिता रहे थे तथा कोई उत्तर नहीं दे पा रहे थे। वे सभी यह जानकर कि कोई ऋषि इसके प्रश्नों का जवाब देने आया है, अपने अपने स्थानों पर बिराजमान हो गए। उस समय राजा जनक ने सभी उपस्थित ऋषियों मुनियों को सम्बोधन करते हुए कहा कि मेरे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अष्टावक्र मुनि आये हैं जिनकी शारीरिक आयु केवल आठ वर्ष है। आज की सभा इसलिए बुलाई गई है कि आप भी उसका उत्तर सुनो और मेरा भी संशय निवृत्त हो। सारे ऋषियों-मुनियों के मन में बहुत उत्साह था कि ऐसा भारत वर्ष में कौन सा ऋषि है जो इतना विद्वान है कि राजा के इस अर्थहीन जैसे प्रश्न का समाधान करेगा और सभी के मन में उस अष्टावक्र मुनि के दर्शन करने की लालसा जाग उठी और सभी सिंह द्वार पर टकटकी लगाकर देख रहे थे। राजा जनक ने प्रधान को आज्ञा दी कि आप श्रद्धा पूर्वक आदर सहित मुनि को पालकी में बिठाकर सभा में ले आओ और यह भी आज्ञा दी कि उनका विनम्रता पूर्वक जय जयकार करते हुए पूरा सत्कार किया जाये, उनके गले में सुगन्धि पूर्ण पुष्प मालाएं पहनाई जाएं और पुष्प वर्षा करते हुए पालकी को लेकर आओ। हुक्म का पालन करते हुए प्रधान, पालकी में बिठाकर उस ऋषि को लाते समय जय जयकार करते हुये दरबार में ले आए। जब आप सिंह द्वार के निकट पहुँच गये तो उस समय चौबदार ने ऊँची आवाज़ में घोषित किया कि अष्टावक्र मुनि जी पालकी में से उतर कर सिंह द्वार से सभा में पधार रहे हैं। सारे ऋषि मुनि दर्शनों के अभिलाषी होने के कारण सिंह द्वार की ओर देख रहे हैं और मन में सोच भी रहे थे कि छोटी सी आयु का अष्टावक्र ऋषि कौन है जो राजा के प्रश्नों का समाधान करेगा।

अष्टावक्र जी पालकी में से उतर कर डण्डी के सहारे सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे, जब ऊपर आकर चल रहे थे तो ऋषि के दर्शन करते ही राजा प्रजा सम्मान करने के लिए खड़ी हो गई। जब दर्शकों से पहले ऋषियों मुनियों ने अष्टावक्र की चाल देखी तो सारे खिलखिला कर हंस पड़े। अष्टावक्र मुनि भी उन्हें देखकर मुँह टेढ़ा करके ज़ोर ज़ोर से हंसने लग पड़ा। राजा ने मन में सोचा कि अष्टावक्र का मान भंग हुआ है और यह क्रोध में आकर कहीं श्राप न दे दें, पर स्वंय हैरान हो गया कि अष्टावक्र जी तो स्वंय ही इन ऋषियों मुनियों को देखकर हंस रहे हैं।

राजा जनक जी ने एक सुन्दर सिंहासन पर उन्हें विराजमान करवाया और हाथ जोड़कर पूछा कि बाल योगी जी, आपके हंसने का क्या कारण था? अष्टावक्र ने कहा कि राजन! मैं इस मूर्ख सभा को देखकर हंस रहा था पर तू भी तो इन सभा वालों के साथ मिलकर हंस रहा था। नहीं हंस रहा था?'' राजा ने कहा मैं तो इसलिये हंसा कि मेरे प्रश्न का उत्तर धुरन्धर विद्वान न दे सके यह छोटा सा कुबड़ा बालक कैसे समाधान करेगा। अष्टावक्र कुछ जलाल में आकर राजा जनक को और कर्कश शब्दों का प्रयोग करते हुए कहने लगे, ''राजन! तू तो स्वंय ही मूर्ख हैं, तेरी सभा भी मूर्खों की है क्योंकि तुम्हारे में से किसी को भी सार और असार का ज्ञान नहीं है। तू इतनी कम बुद्धि का मालिक होता हुआ किस प्रकार अपनी प्रजा पर राज्य करता है? लोग भी ऐसे ही दिखाई देते हैं कि पशु तुल्य ही हैं, क्या लाभ उठाते होंगे तेरा? यदि तेरी सभा और तू मेरे शरीर को देखकर हंसे हो, यह शरीर कुबड़ा है, और इसमें आठ बल पड़ते हैं, पैर मैं कहीं रखता हूँ, रखा कहीं जाता है, देखता मैं किस तरफ हूँ, पर मेरी दृष्टि कहीं और होती है, मेरे शरीर की हरकत

इन बलों के कारण अजीब है पर तू और तेरी सभा मुझे विचार शून्य लगी है क्योंकि यदि विचार करके देखा जाए, मेरा शरीर टेढ़ा-मेढ़ा होने से मेरी आत्मा तो टेढ़ी-मेढ़ी नहीं हो सकती। शरीर के टेढ़े होने से इन्द्रियाँ तथा जीभ तो टेढ़ी नहीं हो सकती। तेरे प्रश्न का उत्तर टेढ़े-मेढ़े शरीर ने तो नहीं देना, वह तो मेरी जुबान ने देना है। मेरी जुबान तो टेढ़ी नहीं तुझे सन्देह क्यों हुआ? राजन! तुम्हारे इस प्रकार हंसने से मुझे यह पता चला है कि इस सभा में कोई भी आत्मदर्शी पुरूष नहीं है, तेरे सहित सभी चर्मदर्शी हैं।''

उस समय जलाल में आकर अष्टावक्र नियत की गई चन्दन की कुर्सी पर बैठ गया और कहा कि अपना प्रश्न ऊँची आवाज़ में बोलकर सुनाओ। राजा जनक ने क्षमा मांगी और अति श्रद्धापूर्वक डण्डोत प्रणाम की, खड़े होकर प्रार्थना की कि महाराज! मैं आपके दर्शन करके कृत कृत हो गया हूँ, आपका ऋणी हूँ कि आपके राज सभा में चरण पड़ने से यह पवित्र हो गया है। ''अपना प्रश्न करो।'' राजा ने पूर्व किए गये वचनों में केवल इतना ही प्रश्न किया कि, ''यह सच या वह सच?'' यह सुनते ही अष्टावक्र ने कहा कि राजन! इतने मामूली से प्रश्न का समाधान करवाने के लिए तूने बड़े बड़े विद्वानों, ऋषियों, मुनियों को आठ साल से यहाँ पर रोका हुआ है, इसमें अपराध तेरा ही है तूने शर्म महसूस करते हुए अपने प्रश्न को खोलकर नहीं बताया अन्यथा कोई कारण नहीं था कि इतने महान ऋषियों मुनियों से इस छोटे से प्रश्न का समाधान न होता। तूने गुप्त प्रश्न किया है और मैं उसका गुप्त ही उत्तर देता हूँ। वह यह है, ''जैसा वह प्रत्यक्ष दिखाई देता था पर था कुछ नहीं, वैसा ही यह प्रत्यक्ष दिखता है वास्तव में यह भी कुछ नहीं।'' यह गुप्त उत्तर सुनकर राजा जनक मन में विचार करने लगा और प्रार्थना की कि आपका उत्तर सुनकर मेरे चित्त में कुछ शान्ति पैदा हुई है, अब मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप इस प्रश्न का विस्तार से उत्तर दें। उस समय अष्टावक्र ने कहा कि महापुरुषो! राजा अपने आप कह नहीं सकता क्योंकि इसे बताने में शर्म आती है। मैं, आठ वर्षो से जो इसके मन पर पर्दा पड़ा है उसे उठाता हूँ। जिसे मैंने अपने योग बल द्वारा जान लिया है। वह यह है कि इस राजा को अपने महल में दोपहर को सोते समय एक सपना आया जिसमें इसने शत्रु राजा के साथ युद्ध किया और हार गया। शत्रु राजा ने इसका राज्य छीन लिया, कड़ाके की धूप में नंगे पैर, नंगा शरीर तिरस्कृत करके देश निकाला दे दिया, ऐलान कर दिया जो कोई इसे रोटी, कपड़ा, जूती, शरण आदि देगा तो उसे सजा मिलेगी और जो इसका तिरस्कार करेगा उसे इनाम मिलेगा। यह इस हालत में अपमान से दुखी हुआ भूखा-प्यासा, कड़ाके की धूप में अति दुखी होकर चला जा रहा था? जब यह दृश्य इसके सामने आता है तो यह भयभीत हो जाता है। यह सपना जो राजा ने देखा था, वह है तो मिथ्या, पर वासना के वेग के कारण ऐसा भ्रम पड़ गया कि इसे पूरी तरह से सच ही लगने लग गया और यह इस भय में डूब गया कि कोई राजा मेरी ऐसी दुर्गति न कर दे। शर्म का मारा हुआ यह किसी को बता नहीं सकता, इतना ही कह पाता है, ''यह सच है या वह सच है?'' कहने लगा सपना तो झूठा होता ही है पर इस राजा को सन्देह हो गया कि यह सच्चा है जिसके फल स्वरूप इसकी सूझबूझ वाली शक्ति बुरी तरह से अन्यमनस्क हो गई और आधे पागल की तरह मस्ताना सा हो गया। अब इसे भ्रम है कि जो कुछ मैंने सपने में देखा है कहीं वह सच न हो जाए और जो मैं अब देख रहा हूँ, यह सपना न हो। कहने लगा, ''हे राजन! सावधान होकर सुन, आठ नौ साल पहले महात्मा की कथा सुनी थी। पहले उन्होंने तुम्हें सिद्ध गीता सुनाई थी फिर तुमने अपने राज महलों में सत्संग करवाया। उस समय महात्मा ने एक प्रसंग में कहा कि प्रभु की माया बहुत प्रबल होती है, मनुष्य को भुला देती है। वाहिगुरू जी से प्यार नहीं करने देती। यह जीव माया के वश होकर अपने आत्म स्वरूप को पूरी तरह से भूल कर अपने आपको पाँच तत्वों की बनी हुई साढ़े तीन हाथ की देह मानने लग जाता है। यह इतनी अपवित्र है कि यदि इसे गन्दगी का थैला कह दिया जाए, वह भी अनुचित नहीं होगा। इसके प्रत्येक अंग में से गन्दगी निकलती रहती है। नाकों में से रेशा, आँखो में से गीद, कानों में से मैल निकलती है तथा मल मूत्र की इन्द्रियों द्वारा दुर्गन्ध से भरा मूत्र और गन्दगी निकलते हैं। ऐसी अपवित्र देही को यह अपना आपा मानता है, यह अपने मूल को नहीं पहचानता। न ही यह इस निश्चय पर आता है कि मैं देह नहीं हूँ। हैरानी की बात है कि इतनी मलीन वस्तु को अपना आपा (निजित्व) मानता है। जब ये वचन महापुरुष कह रहे थे तो तूने पूरी तरह से ज़िद की और

कहा कि किसी भी हालत में मनुष्य अपने आप को नहीं भूलता। तू अपने आप को निश्चय पूर्वक पाँच तत्वों की इस गन्दगी से भरी पोटली रूपी देह मानता था। महात्मा कह रहे थे कि राजन! तू आत्म स्वरूप है, तू अपना स्वरूप मत भूल। तू हठ किये जा रहा था जब मैंने यह जान लिया कि मैं आत्म स्वरूप हूँ तो फिर मैं अपने आप को कैसे भूल जाऊँगा? उस समय महात्मा ने कहा कि राजन! हठ छोड़ दो, पर यदि तू देखना ही चाहता है तो हम तुझे थोड़े से समय में माया के प्रभाव की जानकारी करा देते हैं।

सो राजन्! इस भयानक सपने ने तुझे पूरी तरह से भुला दिया और तू पागलों जैसा हो गया। उन्होंने यह भी कहा था कि तू विद्वानों, महापुरुषों की सेवा करेगा जिसके फल स्वरूप तेरा संकट थोड़े समय के बाद दूर हो जाएगा। एक महापुरुष आयेगा, तुझे सत्य मार्ग के दर्शन करवायेगा तेरा भ्रम तोड़ेगा। उन्हीं महापुरुषों ने तुझे अपनी माया शक्ति से सपना दिखाया पर तुझे धर्मात्मा समझकर तुझे सपने में ही सारा कुछ दिखा दिया। तुझे जाग्रत अवस्था में बहुत दुख होना था पर वह दुख सपने में ही दूर कर दिया। ऐसा समझ लो कि तुझे सूली पर चढ़ना था पर महात्मा ने दया करके कांटा ही बना दिया। हे राजन! जो भोगना था, वह भोग लिया, लिखा हुआ लेख कभी मिटा नहीं करता। महात्मा ने कृपा करके रेख में मेख डाल दी थी। उनके वचन सत्य हो गये, जो तूने जाग्रत अवस्था में भोगने थे। ऐसा ज्ञान पूर्ण वचन कहकर राजा जनक को इस संकट में से निकाला। अब महात्मा ने तेरे पर पड़ी माया दूर कर दी है, तू अब अपना भ्रम दूर कर। सपना तो सपना है ही पर जो तू जाग्रत अवस्था में देख रहा है यह भी सपना ही है। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि -

जैसा सुपना रैनि का तैसा संसार। *अंग - 808*

दूसरा एक अन्य स्थान पर फ़रमान करते हैं -

सुपने सेती चितु मूरखि लाइआ।
बिसरे राज रस भोग जागत भखलाइआ।
अंग - 707

सो यह सपने के पदार्थ ऐसे होते हैं जैसे यदि एक सेर आटा हो तो वह जल्दी खा लिया जाता है। यदि एक किवटंल आटा हो तो उसे काफी समय लगता है पर खत्म दोनों ही हो जाते हैं। इस प्रकार हे राजन! सपना तो सपना है ही। पर जाग्रत जिसे कहा जाता है इसमें जीव सोया हुआ सपना देख रहा है क्योंकि प्रकृति के तीन गुण - रजो, सतो, तमो, इस जीव को सदा ही भ्रमाते रहते हैं और यह नींद में सोया पड़ा है, जो कुछ कर रहा है, यह सब सपना ही है -

तिही गुणी संसारु भ्रमि सुता सुतिआ रैणि विहाणी।
अंग - 920

इस प्रकार राजा को जो भ्रम पड़ा हुआ था वह दूर हो गया क्योंकि स्वपन और जाग्रत दोनों ही मिथ्या हैं। दोनों ही भोगे जाते हैं, मिथ्यापन दोनों में समान हैं। सपना भी मिथ्या है। यह जाग्रत भी मिथ्या ही है। सपने के पदार्थ स्वपन काल में भासित होते हैं पर जाग्रत अवस्था में उनका अभाव हो जाया करता है। उनकी स्मृति रहती है। स्मृति संस्कारों यानि वासना के साथ जुड़ी रहती है। इसी प्रकार जाग्रत के पदार्थ भी जब तक इसकी आयु है तब तक ही अनुभव होते हैं फिर ये भी स्मृति रूप बन जाया करते हैं। जो सखोपत अवस्था है वह जाग्रत एवं स्वपन दोनों ही समान और मिथ्या हैं। जाग्रत के पदार्थों का स्वपन में अभाव हो जाता है। कभी स्वपन के पदार्थों का जाग्रत में सुमिरन ही रहता है, पर उनका भी अभाव हो जाता है। जाग्रत में ही सपने के पदार्थों का भ्रम हो जाता है। जैसे तुझे बिना मतलब के भ्रम हुआ कि तू शीतलता देने वाले पलंगों पर पड़ा था, सपने में सभी पदार्थों का अभाव हो गया और तुझे यह सपना जाग्रत दिखाई देता था, पर यह जाग्रत भी सपना ही है केवल यह भ्रम मात्र है। जब यथार्थ ज्ञान हो जाता है उस समय जाग्रत और सपना ये दोनों ही भ्रम अवस्थाएं प्रतीत होती हैं। वास्तव में जीव को वासना बान्ध लेती है और वासनाओं का बन्धा जीव 84 लाख यौनियों में चक्कर काटता रहता है। अष्टावक्र मुनि ने कहा कि राजन! तुझे अभी तक समरथ गुरू नहीं मिला, इसलिये इतना दुख भोगना पड़ा। यदि तुझे गुरू मिल गया होता तो यह संकट तुझ पर नहीं आना था। उसने तेरा संशय निवृत कर देना था। यह सुनकर राजा ने मन में निश्चय किया कि मैं गुरू धारण करूँ।

'चलता'

नानक से अखड़ीआं बिअंनि जिनी डिसंदो मा पिरी।।

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

सतिनामु श्री वाहिगुरू,
धंन श्री गुरू नानक देव जीओ महाराज!

डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ॥
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ ॥
अंग - 256

फिरत फिरत प्रभ आइआ
परिआ तउ सरनाइ॥
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥
अंग - 289

साधु संगत जी! उच्च स्वर में बोलो सतिनाम श्री वाहिगुरू! अपने-अपने व्यवसायिक कार्यों को विराम देते हुए व गर्मी की परवाह ने करते हुए, अपने नियम के अनुसार आप गुरू दरबार में पहुँचे हो। सत्संग एक ऐसा सहज तप है जिसके पुण्य को न तो कोई छीन सकता है और न ही इसका कोई अहंकार हो सकता है। दरअस्ल सत्संग सबसे बड़ा पुण्य है -

कलि महि एहो पुंनु गुण गोविंद गाहि ॥ अंग - 962

गोबिन्द का गुणगान करने के लिए हम सब यहाँ पर एकत्र हुए हैं। विनती की है कि हे प्रभु जी! जब से आपने संसार बनाया है, बात सोचने वाली है, समझने वाली है और हृदय मे बसाने वाली है क्योंकि संसार के बारे में कोई कुछ भी नहीं कह सकता है -

थिति वारू ना जोगी जाणै रूति माहु ना कोई ॥
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई ॥
अंग - 4

यह संसार किस समय से बनना शुरू हुआ था, इस बारे में जो लोग समय-सीमा निर्धारित करते हैं वे पहुँचे हुए मूर्ख हैं। कई कह देते हैं कि फलां समय से संसार बनना शुरू हुआ है। चाहे कम्प्यूटर की हजारों मशीनें बना लें, इस वाहिगुरू जी की क्रिया को समझना नामुमकिन है। जिस समय से इस संसार का निर्माण शुरू हुआ है, उसी समय से जीवात्माएँ घूम रही हैं। बहुत सारी से ऐसी आत्माएँ हैं जो कि बहुत ही घटिया योनियों में पड़ी हुई हैं, जिनके बारे में गुरू महाराज जी इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

धारना - केते नाग कुली महि आए
केते पंख उडाए ।

केते रूख बिरख हम चीने केते पसू उपाए ॥
केते नाग कुली महि आए केते पंख उडाए ॥
अंग - 156

कई जनम भए कीट पतंगा ॥
कई जनम गज मीन कुरंगा ॥
कई जनम पंखी सरप होइओ ॥
कई जनम हैवर ब्रिख जोइओ ॥ 1 ॥
मिलु जगदीस मिलन की बरीआ ॥
चिरंकाल इह देह संजरीआ ॥ अंग - 176

किस प्रकार का हम लोगों का इतिहास है ध्यानपूर्वक बैठ कर कभी सोचा करो कि इन केचुओं आदि की योनियों के अन्दर से गुजरते हुए हम आए हैं। बहुत सारी निषिद्ध योनियों में से हम लोग होकर आए हैं। गुरू जी कहते हैं कि तुम्हारा आदि तो बहुत नीचे से हुआ है। चार लाख किस्म के ऐसे पत्थर हैं, जिनके अन्दर जान है वे बढ़ते व फूलते हैं। चौबीस लाख किस्म की जड़ी बूटियाँ, वृक्ष व छोटी बूटियाँ हैं, जिनके बीच से तुम होकर आए हो। साढ़े सात लाख किस्म के ऐस पक्षी हैं जिनका रूप धारण करके तुम पंखों के द्वारा उड़ते रहे हो। बहुत बार तुम पिंजरे में बैठकर गंगा राम भी बने हो और राम-राम बोलकर कहते रहे हो। कभी तुम साँप भी बने हो और तुम्हें सपेरों ने अपनी पिटारियों में डालकर घूमा भी, कभी नेवलों के साथ तुम्हारी लड़ाई करवाई हैं, कभी तुम रीछ भी बने, कभी बन्दर भी बने। बहुत सारे लोगों को इस बात का यकीन ही नहीं होता है, वे इन चीजों को मानते ही नहीं हैं। वे न मानने के लिए स्वतन्त्र हैं लेकिन यदि उल्लू कहे कि सूरज है ही नहीं तो क्या उनके कहने से सूर्य का उदय होना बन्द हो जाएगा? यह तो गुरू साहिब का

सिद्धान्त है। व्यक्ति ऊपर की तरफ भी चला जाता है और कभी मनुष्य बनने के बाद पुनः नीचे भी गिर जाता है। गुरवाणी हमें यह बताती है कि कभी यह ऊपर की तरफ जाता है और कभी रहट की टिंडों की भांति नीचे की तरफ भी चल पड़ता है और चौरासी लाख योनियों के चक्रव्यूह में घूमता रहता है, पशु-पक्षी बनता रहता है।

गुरू तेग बहादर साहिब जी का एक चवर-बरदार था। उसके कई नाम बताए जाते हैं। गुरू दसवें पातशाह जी का चवर-बरदार भाई कीरतिया था, वह उनका पुत्र था। एक मदारी एक रीछ को लेकर जा रहा था। गुरू महाराज जी (श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी) की निगाह उस पर पड़ गई। उस समय आप अभी किशोरावस्था में ही थे। वहाँ पर उपस्थित मसन्द लोगों को शक पड़ गया कि हम लोगों ने इन्हें गुरू तो बना दिया है लेकिन ये हैं तो अभी बच्चे ही, इसलिए कहीं ऐसा न हो कि इस गुरुगद्दी का मजाक ही न उड़ जाए।

दरअस्ल यदि पूजा का धन किसी के अन्दर चला जाए तो उसकी तीन चीजें चली जाती हैं। पहली यह है कि उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, दूसरी यह है कि उसे दुनिया भर की बीमारियाँ लग जाती हैं, तीसरी यह है कि उसके अन्दर नास्तिकता आ जाती है, फलस्वरूप वह भजन बन्दगी भी नहीं कर पाता है -

धरमसाला दीआँ रोटीआँ तिंन कंम करेन।
मृत मारन, ह्ड गालण, भजन करन ना देण।

गुरू महाराज जी के पास वे निःशंक रूप से दसवंद एकत्र करके लाते थे लेकिन वे उसका 70-80 प्रतिशत भाग तो अपने पास ही रख जाते थे। कई बार इतिहास में ऐसा भी सवाल आता था कि गुरू घर की आमदन कम क्यों हो गई है? यह सवाल दशमेश जी के समय ही आया। पहले वाले गुरूओं के समय में यह सवाल नहीं आया, जब खोज की तो पता चला कि अधिकांश धन को तो मसन्द लोग रास्ते में ही हड़प कर जाते हैं, इसलिए वह गुरू घर में तो पहुँच ही नहीं पाता है। अतः इस प्रकार का धन खाने वालों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जो भजन बन्दगी करता है, वह बचा रहता है क्योंकि यह धन तो गुरू का है। गुरू के धन के बारे में भक्त कबीर जी का फुरमान है -

एकु कबीरा ना मुसै जिनि कीनी बारह बाट ॥
अंग - 1365

जो इस पूजा के धन के बारह भाग करके उसमें से एक ले ले तो उसे दोष नहीं लगता है अर्थात वह ग्यारह भाग गुरू के खजाने में डाले और एक भाग स्वयं अपने निर्वाह के लिए रख ले और निर्वाह के लिए भी अधिक लालच न करे। यदि वह वारहवां भाग ही ले तो उससे बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती है।

अतः इन मसन्दों को गुरू महाराज जी पर निश्चय नहीं था, वे यही कहते थे कि यह तो शस्त्र चलाने वाला गुरू है, बस यह घोड़े पर चढ़कर मात्र शस्त्र चलाना ही जानता है। इसमें वह बात नहीं है जो कि पहले वाले गुरुओं के अन्दर थी। इस प्रकार से वे सारे नास्तिक हो चुके थे। उस समय सारे मसन्द हाजिर हैं और गुरू महाराज जी ने कहा कि उस रीछ वाले मदारी को बुलाओ। मदारी, रीछ लेकर हाजिर हो गया।

गुरू जी - तुम तमाशा भी करना जानते हो?

मदारी - हाँ, महाराज जी!

गुरू जी - तो फिर तमाशा दिखलाओ?

मसन्द आपस में कानाफूसी करने लग पड़े कि यह इन्होंने पुनः बच्चों वाली बात ही कर दी। वे कहने लगे, महाराज जी! आप गुरुगद्दी पर बैठे हो, संगत दूर-दूर से देश विदेशों से आती है, वे क्या कहेंगे कि इनका गुरू, रीछों के तमाशे करवाता था।

आपने कहा, तुम लोग चुप करो, तुम्हें इन बातों के बारे में पता नहीं है, तुम्हारी तो बुद्धि ही पूजा के धन ने खराब कर रखी है।

अब मदारी रीछ का तमाशा दिखाने लग पड़ा, कभी वह उसके साथ कुश्ती लड़ने लग पड़ता है, कभी ढह जाता है और कभी उसे नीचे गिरा लेता है। सारी संगत हास्य रस में सराबोर है यानि कि सभी लोग ऊँची आवाज में हँस रहे हैं। महाराज जी ने जब पीछे की तरफ मुँह फेरा तो क्या देखा कि भाई कीरतिया भी हँस रहा है। महाराज जी कहने लगे, भाई कीरतिया! तुम मत हँसो अन्य लोगों को हँस लेने दो।

भाई कीरतिया बोला, महाराज! मैं क्यों न हसूँ?

गुरू जी - क्योंकि यह तुम्हारा पिता है।

अब भाई कीरतिया को भी बहुत गुस्सा आ गया क्योंकि वह भी श्रद्धा से रहित ही था। वह कहने लगा कि यह भी इन्होंने बच्चों वाली बात ही कर दी। इन्होंने तो इस रीछ को ही मेरा पिता बतला दिया। मेरा पिता तो गुरू नौवें महाराज जी का चवर-बरदार रहा है। अब उसने चवर को

एक तरफ रख दिया और गुरू जी के चरणों में मत्था टेक दिया।

महाराज जी बोले, क्या हुआ?

कहने लगा, महाराज जी! गुरुओं की सेवा क्या फल देती है? मेरे पिता ने सेवा की वह तो रीछ बन गया और मैं आपकी सेवा करता हूँ, आप मुझे क्या बनाओगे? क्या आप मुझे बन्दर बनाओगे? सारे मसन्दों ने भी इस बात का बुरा मनाया कि महाराज जी ने यह किस प्रकार की बात कर दी और वह भी खुली सभा में। इस प्रकार से तो कोई भी सेवादार इनके पास टिकेगा ही नहीं क्योंकि यदि सेवा करके रीछ ही बनना है तो फिर सेवा करने का लाभ ही क्या है?

महाराज जी कहने लगे, प्रेमीपुरुष! यह तुम्हारा पिता ही है हम अभी तुम्हें दिखला देते हैं।

गुरू जी मदारी को कहने लगे, क्यों बन्धु! तुमने अपना रीछ बेचना है? गुरू जी ने वह रीछ का मूल्य अदा करके उसे खरीद लिया। आप कहने लगे यह तो हमारा सिक्ख है, बन्धु। तुम तो हमारे सिक्ख को लिए जा रहे हो। हमने अपने सिक्ख को डूबने नहीं देना है बल्कि उसे बचाना है, यह हमारा बिरद है।

महाराज जी के पास कड़ाह प्रसाद की देग भोग लगाने के लिए आई हुई थी। आप ने थोड़ा सा प्रसाद उठाया और अपने मुँह में रख लिया तथा कुछ अपना शीत प्रसाद उस रीछ के आगे रख दिया। रीछ ने जिस समय वह शीत प्रसाद ग्रहण किया, तो उसी समय वह धड़म्म से जमीन पर गिर गया।

गुरू जी कहने लगे, भाई कीरतिया! देखो यह कौन है?

वह बोला, यह तो हमारा पिता ही है।

गुरू जी - फिर तुम क्रोधावेश में क्यों आ रहे थे? इससे पूछो इसके साथ यह सब कैसे हुआ? इतनी सेवा करने के बाद भी यह रीछ क्यों बन गया?

वह कहने लगा कि बेटा जी! गुरू घर की जो सेवा है, यह बहुत ही चेतन होकर करनी चाहिए क्योंकि यदि थोड़ी सी भी गलती हो जाए तो सेवा लेखे में नहीं पड़ती है और उल्टा सजा भुगतनी पड़ जाती है।

भाई कीरतिया कहने लगा, पिता जी! आपको किस बात की सजा मिली?

भाई कीरतिया का पिता कहने लगा, पुत्र जी! मेरे अन्दर बहुत अभिमान आ गया था कि मेरे से अधिक अन्तरंग सेवादार या सिक्ख अन्य कोई दूसरा नहीं है। सारी संगत के सामने मैं ही चवर करता हूँ। यदि कोई नजदीक न हो तो पैसा-टका भी मैं ही सम्भालता हूं। प्रसाद आदि बाँटने की सेवा भी मैं ही करता हूँ। वह कहने लगा कि एक दिन मैं प्रसाद बाँट रहा था और मैं बहुत ही रूखे वचन बोल रहा था। वहाँ पर एक अभेदावस्था का सिक्ख आ गया, जिसका नाम भाई धन्ना था। वह दसवन्द लेकर आ रहा था। उसकी बैलगाड़ी दसवन्द के पदार्थों से भरी हुई थी। जब उसने देखा कि गुरू जी को भोग लगा हुआ प्रसाद बँट रहा है तो उसके मन में श्रद्धा जाग गई। उसने बैलगाड़ी खड़ी करने के बाद बैल हाँकने वाली छड़ी को अपनी काँख में दबाते हुए प्रसाद लेने के लिए हाथ फैला दिए। उसका सारा मुँह, दाढ़ी व कपड़े धूल से लथपथ थे और पैर भी धूल से भरे हुए थे। मेरे मन में ग्लानि उत्पन्न हुई कि यह यहाँ पर बैठकर प्रसाद क्यों माँग रहा है बल्कि इसे तो दूर बैठना चाहिए था, फलस्वरूप मैं दूसरी तरफ की संगत को प्रसाद देने लग पड़ा। अब वह उठकर दूसरी तरफ आ गया। इसके बाद मैं पुनः दूसरी तरफ प्रसाद बाँटने लगा लेकिन वह फिर दौड़कर दूसरी तरफ आ गया। जब उसने पीछे मुड़कर देखा तो उसके बैल धीरे-धीरे चलने लग पड़े थे, फलस्वरूप वह पुनः दूसरी तरफ आ गया। इसके बाद मेरे मुँह से निकल गया कि कैसे रीछ की भांति छलांगे लगा रहा है, एक जगह टिक नहीं सकता है? उसने प्रसाद का एक कण, जो नीचे गिरा हुआ था, उठाकर अपने मुँह में रख लिया और कहने लग, प्रेमीपुरुष! मैं तो रीछ की भांति इधर उधर छलांगे नहीं लगाता हूँ, तुम अवश्य लग रहे हो, इसलिए तुम रीछ अवश्य बनोगे।

मेरे मन में आ गया कि गुरसिक्ख का जो वचन है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाया करता है। वह तो अब अवश्य ही पूरा होगा। जब वह वहाँ से चला गया तो मुझे पता चला कि वह तो पूर्ण ब्रह्मज्ञानी व अभेदावस्था का गुरसिक्ख था। मेरे मन के अन्दर अब यह शंका बहुत गहराई में चली गई कि मैं तो अब अवश्य ही अगले जन्म में रीछ बनूँगा।

मैंने महाराज जी के पास विनती की कि पातशाह! मैं आपकी सेवा करता हूँ और आपकी सेवा का फल भी बहुत अधिक है। महाराज जी कहने लगे, सेवा का फल तो बहुत लेकिन -

मति थोड़ी सेव गवाईऐ ॥ ***अंग - 468***

कई बार बुद्धि की कमी के कारण की गई सेवा व्यर्थ

भी चली जाती है।

महाराज जी बोले, कहो, क्या हुआ?

मैंने कहा महाराज जी! मैं तो आपकी शरण में हूँ और बचपन से ही आपकी सेवा करता हूँ। आप तो गुरू हो और भाई धन्ना एक सिक्ख है और आप भी उसका पक्ष ले रहे हो? क्या आप उसके वचन को बदल नहीं सकते हो?

गुरू जी कहने लगे, भद्रपुरुष! मेरे अन्दर यह शक्ति नहीं है क्योंकि -

धारना - मेरी बंनी होई भगत छुडाउंदे ने,
भगताँ दी बंनी ना छुटदी।

मेरी बाँधी भगतु छडावै बाँधै भगतु न छूटै मोहि ॥
एक समै मो कउ गहि बाँधै
तउ फुनि मो पै जबाबु न होइ ॥ ***अंग - 1253***

गुरू जी कहने लगे, भाई! वह अभेदावस्था का गुरसिक्ख है जिसका प्रत्येक श्वास परमात्मा की याद में व्यतीत होता है और जिन्हें परमात्मा कभी भी विस्मृत नहीं होता है वे तो गुरू का रूप ही हुआ करते हैं -

जिना न विसरै नामु से किनेहिआ ॥
भेदु न जाणहु मूलि साँई जेहिआ ॥ ***अंग - 397***

दूसरा तुम गुरवाणी में पढ़ते नहीं हो जो अभेदावस्था के गुरसिक्ख होते हैं, वे गुरू की मर्जी के बिना कुछ भी नहीं बोलते हैं और वे जो कुछ भी बोलते हैं, वे सब गुरू के ही वचन बोलते हैं, उनकी रसना पर गुरू ही बोलता है -

धारना - प्रभ जी दा वासा है,
संताँ दी रसना उते।

प्रभ जी बसहि साध की रसना ॥ ***अंग - 263***

गुरू जी कहने लगे, प्रेमीपुरुष! वे वचन उसने नहीं कहे थे, बल्कि मैंने ही कहे थे।

मैंने कहा, पातशाह! मेरी सेवा?

मैंने तो सारी जिन्दगी आपके चरणों में ही गुजार दी। एक यह भूल मुझसे हो गई है। आप मेरे ऊपर कृपा करो ताकि मैं योनियों में घूमता न फिरूँ।

गुरू जी कहने लगे, देखो भाई! तुम रीछ तो अवश्य बनोगे लेकिन दसवें स्वरूप में आने के बाद हम जल्दी ही तुम्हें छुड़ा लेंगे।

इस प्रकार गुरू दशमेश जी कहने लगे, क्यों भाई! तुमने सारा वृत्तांत अपने पिता जी को पूछ लिया? यह इस वजह से रीछ की योनि में आया था।

गुरू दशमेश जी के इतिहास में बहुत सी ऐसी साखियाँ आती हैं जिनमें दशमेश जी ने अपने सिक्खों को छुड़ाया। कहीं सिक्ख घोगड़ बने हुए हैं, कहीं पर कौए बने हुए हैं। कई कहते हैं कि गुरू जी शिकार खेलते थे, नहीं, ऐसा नहीं था बल्कि वे तो ढूंढ़-ढूँढ़ कर उन रूहों को, जो कि सत्युग, त्रेता, द्वापर व कल्युग से योनियों के चक्रव्यूह में फँसी हुई थीं, उनका उद्धार कर रहे थे जो किसी शाप के कारण अथवा किसी अन्य गलती के कारण योनियों में पड़ गए थे, उन्हें मुक्त कर रहे थे। वे तो पुनः मनुष्य योनि में जीवित ही कर देते थे, क्या हम लोगों के अन्दर ऐसी शक्ति है?

अतः विनती करने का मेरा तात्पर्य है कि योनियों में जाना पड़ता है। मनुष्य नीचे की तरफ भी जा सकता है और मनुष्य ऊपर की तरफ भी जा सकता है यानि कि उत्तम योनियों में भी जा सकता है। देवताओं की योनि को मनुष्यों से उत्तम नहीं माना गया है बल्कि देवजन तो मनुष्य बनने के लिए ही लालायित रहते हैं -

इस देही कउ सिमरहि देव ॥
सो देही भजु हरि की सेव ॥ ***अंग - 1159***

अतः वह शरीर हमें प्राप्त हो गया है, जिसे लेखे में लगाने के लिए हमने विनती की है कि हे प्रभु! यह जन्म हमने तुम्हारे लेखे में दे दिया है। अब यह बात अलग है कि केवल बातों के तौर पर ही दिया है या फिर सचमुच ही दे दिया है? गाते तो हम सभी हैं लेकिन इस बात की अभी हमें समझ नहीं आई है कि क्या सचमुच ही जीवन अर्पित किया जाता है अथवा गाकर ही काम चला लिया जाता है।

एक जगह पर श्री गुरू नानक देव जी बिराजमान हैं और मरदाना इधर-उधर टहल रहा है। मरदाना जी ने वहाँ पर क्या देखा कि वहाँ पर एक कब्रिस्तान है और कब्रिस्तान में सबकी उम्रें लिखी हुई हैं और वहाँ पर किसी की उम्र पाँच साल लिखी है और किसी-किसी की सात साल लिखी है, किसी की दस साल लिखी है। मरदाना इसे देखकर हैरान हो गया और हैरानी की अवस्था में ही वह महाराज जी के पास आ गया और कहने लगा, पातशाह! इस शहर का निर्वाह कैसे होता होगा क्योंकि यहाँ के कब्रिस्तान में जो लोगों की उम्रें खिी हुई हैं, वह सात-आठ साल से अधिक की नहीं लिखी हुई हैं।

महाराज जी कहने लग, मरदाना! तुम हैरान क्यों हो रहे हो? पास में ही तो नगर है, जाकर पूछ भी आओ और खाना वगैरह भी खा आओ। इस प्रकार से तुम्हारे शंके की भी निवृत्ति हो जाएगी।

अब मरदाना उस नगर में चला जाता है, वह वहाँ पर क्या देखता है कि यहाँ पर तो सौ-सौ साल के वृद्ध बैठे हुए हैं। गाँव के दोनों तरफ दरवाजा है और दरवाजे के दोनों दरफ बैठने की जगहें बनी हुई हैं, जहाँ पर कि आने-जाने वाले अतिथियों का सम्मान किया जाता है, उनकी आदर सहित आव-भगत की जाती है। मरदाना की भी वहाँ जाने पर खूब आव-भगत की गई और पूछा गया कि आओ! भाई कैसे आए हो? मरदाना जी ने कहा, प्रेमीजनो! मुझे तो आप एक बात बताओ कि आप लोग तो यहाँ पर बड़ी-बड़ी उम्र वाले बैठे हुए हो जबकि कब्रिस्तान में सबकी उम्र पाँच सात साल की ही लिखी हुई है। क्या यहाँ पर कब्रिस्तान एक है या दो? नगरवासियों ने कहा कि कब्रिस्तान तो यहाँ पर एक ही है। मरदाना ने कहा कि फिर वहाँ पर उम्रें तो बहुत कम लिखी हैं?

वे कहने लगे, देखो भाई मरदाना जी! हमारे नगर के अन्दर कोई भी मनमुख या बेमुख नहीं है, हम सभी लोग पीर को मानने वाले हैं, हम लोग बेमुरशदे नहीं हैं। हमारे यहाँ यह रिवाज है कि जब पाँच साल बच्चा होता है तो उसके बाद उसे उसके माँ-बाप एक डायरी दे देते हैं ताकि उसने दिन भर में जितना पाठ किया है, भजन किया है, कोई नेक कार्य किया है, उसे वह रात में सोने के समय लिख कर सोया करे। यह रीति हमारे शहर की है, फिर जब वह अट्ठारह वर्ष का हो जाता है तो उसके बाद हम उसे एक बही दे देते हैं ताकि वह उसके अन्दर सारे पाठ व भजन आदि का रिकार्ड बखूबी रखता रहे, जिस समय वह व्यक्ति परलोक गमन करता है तो फिर हमारी पंचायत होती है, उस समय हम उस डायरी और बही खाते को लेकर समय का योग कर लेते हैं कि इसने कितना समय संसार की तरफ लगाया और कितना समय निरंकार की तरफ लगाया है, उसके बाद जितना समय उसने नेक कार्यों व भजन बन्दगी आदि में लगाया होता है, उसका योग करके उसके साल बना लेते हैं तथा उनकी उम्र को उसकी कब्र पर अंकित कर देते हैं क्योंकि जो उम्र परमात्मा की याद के बिना यूँ ही बीत गई वह तो किसी लेखे में पड़ी ही नहीं -

उमर ओहा विच लेखे दे
जो याद सांई विच गुजरे, पैंदी मुजरे।
नहीं तां सानूं हासल की है
इस विच नीले हुजरे, संझ ते फजरे। *भाई वीर सिंह जी*

अत: मरदाना जी उसी उम्र को हम लोग उसकी कब्र पर अंकित करते हैं।

कभी सोच कर देखो कि एक व्यक्ति की उम्र 75 वर्ष की हो तो उसके पाँच साल तो बचपन के ही निकाल दो क्योंकि उस समय तक तो बच्चे को कुछ पता ही नहीं चलता है। उसके बाद यदि वह रोज अढ़ाई घंटे नाम सिमरन करता है। पहली बात तो यह है कि यह अढ़ाई अंटे किसी के पूरे नहीं लगते हैं, किसी के 10 मिनट लगते हैं, किसी के 5 मिनट लगते हैं और किसी के 2 मिनट ही लग पाते हैं। कोई भाग्यशाली है जिसके 20 मिनट लेखे में लग जाएँ। बाकी समय कहाँ चला गया? बाकी तो सैर-सपाटों में निकल गया, जहाँ मन ने छलांगे लगाईं, वहाँ चला गया। इसकी पाँच वृत्तियाँ होती हैं जो कि इसे टिकने ही नहीं देती हैं। इसीलिए इसका चित्त एकाग्र नहीं हो पाता है, जब तक चित्त एकाग्र नहीं होता है, तब तक इसका समय लेखे में नहीं पड़ता है। गुरू जी कहते हैं कि -

प्रभ की उसतति करहु संत मीत ॥
सावधान एकागर चीत ॥ *अंग - 295*

यदि हम सावधानीपूर्वक पूजा-पाठ करते हैं, तभी वह लेखे में पड़ा करता है अन्यथा महाराज जी ने पहला कदम आगे बढ़ाते समय ही बात स्पष्ठ कर दी थी।

श्री गुरू नानक देव जी को नमाज पढ़ने के लिए लेकर जाते हैं। नवाब नाराज होता है कि नानक जी! आप नमाज पढ़ने के लिए आए थे?

महाराज जी ने कहा, नवाब साहिब! आपने ही नमाज नहीं पढ़ी तो मैं नमाज किसके साथ पढ़ता?

काजी बोला, नानक जी! हम लोग तो नमाज पढ़ रहे थे?

गुरू जी बोले, नवाब साहिब तो कान्धार में घोड़े खरीद रहा था।

काजी बोला, फिर मेरे साथ पढ़ लेते?

गुरू जी बोले, काजी साहिब! आप भी अपनी घोड़ी के नवजात शिशु को अन्धे कुएँ में गिरने से बचा रहे थे, तुम यहाँ पर है ही कहाँ थे? इस प्रकार से नमाज अदा नहीं

की जाती है, बल्कि नमाज तो चित्त की एकाग्रता के साथ ही अदा की जाती है। जिसकी नमाज पढ़ी जा रही है, उसके सिवाए सब कुछ भूल जाना। तब कहीं जाकर नमाज लेखे में पड़ा करती है। देखो! यह बात समझने वाली है और समझ कर अमल में लाने वाली है। समय तो लेखे में तभी पड़ेगा जबकि हम प्यारपूर्वक उसे याद करेंगे। यदि हम जुबान से तो पढ़ते जा रहे हैं लेकिन हमारा मन इधर-उधर दौड़ रहा है, तो फिर बात नहीं बना करती है। क्या कभी एकाग्र चित्त से पढ़कर देखा है? हम लोग तो बस एक रस्म अदा करने जैसा ही पढ़ते हैं। वैसे ही किसी भ्रम में न पड़े रहना कि मैं पाँच वाणियाँ पढ़ता हूँ या मैं इतना नाम जपता हूँ। वास्तविक बात यह है क्या तुम्हारा चित्त भी एकाग्र होता है?

एक बार एक सौदागर काफिला लेकर जा रहा है, यह ईरान की बात है, वहाँ पर एक महिला है, वह मजनू को बहुत प्यार करती है और उसका नाम है - लैला। मजनू को बाहर निकाल ककर वीरान इलाके में बैठा दिया गया है। वहाँ पर वह काफिला नमाज अदा कर रहा था और इधर यह लैला अपने प्रेमी मजनू के प्रेम में सराबोर हुई उसे मिलने के लिए जा रही है, उसे इस बात का जरा सा भी ध्यान नहीं है कि वहाँ पर कोई काफिला नमाज भी पढ़ रहा है। जिस समय वे सारे नमाजी, नमाज अदा कर चुके तो उन्होंने इस लैला को पकड़ लिया और काजी के पास मुकद्दमा हुआ कि इसने हमारी नमाज को खण्डित कर दिया। काजी बहुत ही ईमानदार प्रकृति का था। वह कहने लगा, ऐ लड़की! तुमने इनकी नमाज कजा की है?

वह कहने लगी, देखो काजी साहिब! मुझे तो सचमुच ही इस बात का पता नहीं था कि ये नमाज पढ़ रहे हैं और इनकी नमाज मेरे गुजरने से खण्डित हो जाएगी। देखो! मैं एक इन्सान को प्यार करती हूँ, उसका प्यार मेरे रोम-रोम में इतना समा गया है, मुझे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। मुझे आस पास के बारे में भी कुछ पता नहीं लगा कि मैं इनके आगे से कब गुजर गई और ये कहाँ पर मौजूद हैं मुझे इस बात का भी कोई आभास नहीं है क्योंकि मैं तो अपने प्रेमी के प्रेम में ही इतना अधिक सराबोर थी लेकिन आप इन्हें यह तो पूछो कि ये तो अल्लाहताला को प्यार करने वाले हैं और उसके पास एक मन व एक चित्त होकर दुआ कर रहे थे तो फिर इन्हें इस बात का कैसे पता चल गया कि मैं इनके आगे से गुजर रही हूँ? क्या ये लोग नमाज पढ़ भी रहे थे अथवा वैसे ही एक रस्म अदा कर रहे थे?

काजी ने मुकद्दमा खारिज कर दिया। वह काफिले के सरदार को कहने लगा कि तुम लोग नमाज नहीं पढ़ रहे थे क्योंकि तुम्हारा मन ही एकाग्र नहीं था। जब तक मन व चित्त एकाग्र ही न हो तब तक सारी बात लेखे में ही नहीं पड़ा करती है।

अत: मैं विनती कर रहा था कि यदि हम लोग पाँच साल की आयु से ही भजन-बन्दगी की उम्र को गिनने लग जाएँ और अढ़ाई घंटे रोज की औसत भजन बन्दगी का हिसाब लगाएँ जो कि हमने चित्त की एकाग्रता के साथ की है तो फिर यह समय केवल सात वर्ष का ही बनता है। आप स्वयं इसकी गणना करके देख सकते हैं। यदि हम संकल्पों व विकल्पों के द्वारा अपनी एकाग्रता को खण्डित करते रहते हैं फिर तो कुछ भी समय लेखे में नहीं पड़ता है। बस वही समय लेखे में पड़ता है जो उसकी याद में गुजर जाए -

उमर ओहा विच लेखे दे
जो याद सांई विच गुजरे, पैंदी मुजरे।
नहीं तां सानूं हासल की है
इस विच नीले हुजरे, संझ ते फजरे। *भाई वीर सिंह जी*

अत: गुरू महाराज जी लेखे की बात के बारे में कहते हैं। हमने कहा कि महाराज जी! हमारा जीवन तो बहुत घूम कर आया है, इसलिए बस यह लेखे में लग जाए।

आप इस प्रकार से पढ़ लो -

धारना - लेखे विच ला लओ जी,
जनम तुमारे लेखे।

बहुत जनम बिछुरे थे माधउ इहु जनमु तुमारे लेखे ॥
कहि रविदास आस लगि जीवउ
चिर भइओ दरसनु देखे ॥ ***अंग - 694***

रविदास जी ने अपना जीवन लेखे में लगा दिया था। हम उसके बारे में प्राय: पढ़ते भी रहते हैं, लेकिन हमारा जीवन तो किसी अन्य लेखे में लग रहा है। यदि कहीं हमारा इरादा बन जाए कि हमारा जन्म लेखे में लग जाए तो फिर सफलता भी बहुत जल्दी ही प्राप्त हो जाया करती है। हमें यह शरीर परमात्मा ने बहुत ही विचित्र रूप से बना कर दिया है -

पुतरी तेरी बिधि करि थाटी ॥
जानु सति करि होइगी माटी ॥ ***अंग - 374***

इस शरीर का एक-एक अंग परमात्मा ने बड़े ही ढंग से बनाया है और इसके एक-एक अंग की प्राप्ति बहुत खूब लेखे में पड़ती है, बशर्ते हम उसका विधिपूर्वक प्रयोग करें। जिस प्रकार किसान जब बुवाई करते हैं तो कुछ किसान तो

एक ही फाले वाले हल से बुवाई करते हैं और मान लो खेत 30-40 एकड़ का बहुत बड़ा है तो फिर उसमें एक फाले से कितनी बोवाई हो पाएगी चाहे जितना मर्जी ट्रैक्टर दौड़ाते रहो। दूसरी तरफ कुछ किसान इस प्रकार के होते हैं जो कि बीज बोने वाली मशीन के साथ बोवाई करते हैं, जिसमें बारह-पन्द्रह नालियाँ लगी हुई होती हैं, वे किसान थोड़े समय में ही सारे खेत को बो लेते हैं। यह हाल हमारा है, हमारे शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं और ये सब मन के अधीन हैं, यदि हमारा मन साथ दे दे तो फिर हमारा काम सहजता से ही बन जाता है -

ममा मन सिउ काजु है मन साधे सिधि होइ ॥
मन ही मन सिउ कहै कबीरा
मन सा मिलिआ न कोइ ॥ ***अंग - 342***

मन को मनाने की बात है यदि मन मान जाए, श्रद्धा में आ जाए और इसके अन्दर शुभ विचार आ जाएं तो फिर यह मन अपनी इन्द्रियों के माध्यम से बड़ी जल्दी ही अपने कार्य को सफल कर लेता है। यदि मन ही न माने तो फिर यह इन्द्रियां भी नहीं मानती हैं, इस प्रकार से इस बात को समझना पड़ता है। यदि नहीं समझता है तो महाराज जी कहते हैं कि तुम इस संसार पर आ तो गए हो मनुष्य जन्म भी धारण कर लिया है लेकिन मनुष्य नहीं बन सके हो -

धारना - आवण नूं जग विच आ गए ने,
बिन बुझे पसु ढोर।

आवन आए स्रिसटि महि बिनु बूझे पसु ढोर ॥
नानक गुरमुखि सो बुझै जा कै भाग मथोर ॥
अंग - 251

यदि वास्तविकता को समझ लिया फिर तो मनुष्य है अन्यथा महाराज जी कहते हैं कि तुम तो पशु ही हो और पशु भी ढोर हो -

मानुखु बिनु बूझे बिरथा आइआ ॥ ***अंग - 712***

उसका संसार पर आने का कोई लाभ नहीं है क्योंकि वह यदि अपने मनोरथ को समझ गया तो फिर तो उसका इस संसार में आना सार्थक है अन्यथा -

अनिक साज सीगार बहु करता
जिउ मिरतकु ओढाइआ ॥रहाउ ॥
धाइ धाइ क्रिपन स्रमु कीनो इकत्र करी है माइआ ॥
दानु पुंनु नही संतन सेवा कित ही काजि न आइआ॥
अंग - 712

धन एकत्र करने के लिए ही दिन रात लगा रहा, न दान किया, न पुण्य किया, न सन्तजनों की सेवा की तो फिर बतलाओ इसके द्वारा संसार पर आने का लाभ क्या हुआ?

सारो दिनसु मजूरी करता तुहु मूसलहि छराइआ ॥
अंग - 712

धान के अन्दर से चावल निकाल लिए हैं और बस भूसे को ही पीटने लगा हुआ है। अब भूसे में से क्या निकल पाएगा?

खेदु भइओ बेगारी निआई घर कै कामि न आइआ॥

अंग - 712

न तो कोई काम ही बना और न ही धनोपार्जन कर पाया, बस थकान ही पल्ले पड़ी। इस प्रकार से असली बात को बूझने के बिना सारा कुछ निरर्थक ही है लेकिन यह तत्व वस्तु को बूझ ले तो फिर सारे अंग इसकी मदद करते हैं।

एक बार श्री गुरू नानक देव जी जंगल के अन्दर बैठे हैं, शबद का उच्चारण हो रहा है। उस शबद के उच्चारण की आवाज दूर-दूर तक गई। वृक्षों के बीच से वह आवाज गई, वृक्षों का भला हो गया, पत्थरों ने वह आवाज सुनी, पत्थरों का भला हो गया। वहाँ पर मरदाना क्या देखता है कि एक शेर जंगल में से निकला है, उसने सामने एक मृत व्यक्ति को देखा, जो कि कहीं दूर से बहता हुआ आकर नदी के तट के साथ लगा हुआ था, वह उसे खाने के लिए उसकी तरफ बढ़ा। उसके पास जाकर उसने उसे सूँघा और पीछे हट गया। कुछ देर बाद वह पुनः हिम्मत करके उसकी तरफ बढ़ा क्योंकि वह बहुत अधिक भूखा था। उसने उसका माथा सूँघा, उसके हाथ सूँघे, सारा शरीर सूघा, पैर सूँघे और उसके बाद सिर मारने लग पड़ा।

मरदाना जी ने पातशाह के चरणों में विनय की कि महाराज जी! मैंने यह लीला घटित होती हुई देखी है, लेकिन मुझे कोई बात समझ में नहीं आई है। सामने मृत व्यक्ति पड़ा है और शेर बहुत ज्यादा भूखा है, लेकिन उसने उसे खाया क्यों नहीं?

गुरू जी बोले, मरदाना! तुम यह जवाब शेर से ही पूछ लो।

महाराज जी ने मरदाना को शेर से सवाल करने का बल दे दिया। दरअस्ल ये जो अध्यात्मवाद की बातें होती हैं, ये संसार की समझ से परे होती हैं। आदमी के अन्दर एक एसी जगह होती है जो कि दसवें द्वार के नजदीक होती है,

यहाँ पर सर्व विद्या का ज्ञान होता है, इस विद्या को जानने वाला सभी पशु-पक्षियों की बोली को जानने में समर्थ होता है। पहले जमानो में बन्दगी करने वाले लोग हुआ करते थे वे टैलीपैथी के द्वारा सबकी बोली को समझ लेते थे, अन्दर जो भी भाव आते जाते थे और वे उनके तात्पर्य को समझ जाते थे। लेकिन ज्यों-ज्यों व्यक्ति का मन अधिक विस्तार में चला गया त्यों-त्यों यह व्यक्ति इस विद्या से दूर होता चला गया और आज के समय में इस सर्वविद्या योग का तो क्या पता चलना था, यह तो स्वयं ही भूल बैठा है। इस प्रकार महाराज जी ने मरदाना जी पर कृपा कर दी।

अब मरदाना जी उस शेर को सवाल करने लग पड़ा। शेर ने जवाब दिया कि ऐ मरदाना जी! श्री गुरू नानक देव जी का शबद सुनकर मेरे अन्दर ज्ञान का प्रकाश हो गया। फलस्वरूप मुझे पता लग गया कि मैंने पूर्वजन्म में कौन सा ऐसा बुरा कर्म किया था, जिस कारण से मुझे यह निषिद्ध योनि प्राप्त हुई है और मेरा आहार इस योनि में माँस खाना ही हो गया है। मुझे भूख बहुत लगी हुई थी, इसलिए मैं इस मृत व्यक्ति को खाने के लिए इसके पास आया। पहले मैंने इसे सूँघा, सूँघने से मुझे पता चला कि यह तो मनमुख व्यक्ति है, नास्तिक व्यक्ति है और इसका शरीर महा अपवित्र है। मैं पुनः इसके पास आया कि शायद इसने अपने शीश को ही किसी महापुरुष के चरणों में निवाया हो या कभी अपने नेत्रों के द्वारा किसी महापुरुष के दर्शन किए हों, कभी अपनी रसना द्वारा किसी महापुरुष को मीठे बोल ही बोले हों, हाथों के द्वारा किसी की सेवा की हो, कभी पैरों के द्वारा चलकर सत्संग में ही गया हो। भाई मरदाना! मैं हैरान हो गया कि यह तो ऐसा व्यक्ति था जिसने भूलकर भी कभी कोई नेकी का कार्य नहीं किया था और यह तो सारा बुराई के साथ ही भरा पड़ा था। गुरू जी द्वारा प्रदत्त ज्ञान के प्रकाश में मैंने सोचा कि मैं तो पहले ही अपने बुरे कर्मों की बदौलत इस निषिद्ध योनि में पड़ा हुआ हूँ और अब यदि मैंने इस तथाकथित बुरे व्यक्ति का माँस खा लिया तो न जाने मुझे और कौन सा घोर पाप लग जाए, फलस्वरूप मैंने इस मनमुख का माँस न खाकर भूखा रहना ही बेहतर समझा -

बिनु गुर मूड़ भए है मनमुख ते
मोह माइआ नित फाथा ॥
तिन साधू चरण न सेवे कबहू
तिन सभु जनमु अकाथा ॥ *अंग - 696*

नामु न चेतहि सबदु न वीचारहि
इहु मनमुख का आचारू ॥
हरि नामु न पाइआ जनमु बिरथा गवाइआ
नानक जमु मारि करे खुआर ॥ *अंग - 508*

मनमुख लोगों का इस प्रकार का हाल हुआ करता है। इस प्रकार के लोगों ने कभी किसी सन्तजन के दर्शन तो क्या करने हैं, उल्टा वे तो उनकी निन्दा ही करते हैं। उन्हें दुख ही पहुँचाते हैं। सन्तजनों के साथ वैर करना तथा मनमुख लोगों के साथ प्यार करना मनमुख लोगों के आचार की मुख्य विशेषता होती है -

सतिगुरू जिनी न सेविओ सबदि न कीतो वीचारू ॥
अंग - 88

देखने में तो वे मनुष्य ही होते हैं लेकिन उनका आन्तरिक समझ का स्तर बहुत निम्न ही होता है -

ओइ माणस जूनि न आखीअनि पसू ढोर गावार ॥
ओना अंतरि गिआनु न धिआनु है
हरि सिउ प्रीति न पिआरू ॥
मनमुख मुए विकार महि मरि जमहि वारो वार ॥
अंग - 1418

अतः इस प्रकार से भाई मरदाना! मैंने इस दोष के कारण ही इसका माँस नहीं खाया। आओ हम पुनः विचार करें कि हमें बहुत मुश्किल से यह देह प्राप्त हुई है, इसलिए हमें इस बात पर विचार गहराई से करनी चाहिए। गुरू जी कहते हैं कि तुमने बहुत सारा समय यूँ ही गंवा लिया है, जबकि बहुत सारी योनियों के बाद तुम्हें यह देह प्राप्त हुई है। तुम्हें इस बात को अपने हृदय में बसा लेना चाहिए -

धारना - बहुते जुग फिरदे-फिरदे नूं,
तैनूं माणस देही मिल गई।

फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ मानस देह लही ॥
नानक कहत मिलन की बरीआ सिमरत कहा नही ॥
अंग - 631

तुम किस कार्य को करने के लिए इस संसार पर आए हो? इस बारे में महाराज जी कथन करते हैं -

भई परापति मानुख देहुरीआ ॥
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥ *अंग - 12*

करोड़ों वर्षों के बाद तुम्हें मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है और यह जन्म तुम्हें इसलिए प्राप्त हुआ है कि तुमने परमात्मा को मिलना है। हमने इस तरफ कोई कदम बढ़ाना है अथवा नहीं, यह हमें स्वयं ही देखना चाहिए। अब सवाल यह पैदा होता है कि वह परमात्मा है कहाँ, जिसे मिलना है? गुरू जी कहते हैं कि वह परमात्मा तो तुम्हारे अन्दर है -

काइआ नगरू नगर गड़ अंदरि ॥
साचा वासा पुरि गगनंदरि ॥
असथिरू थानु सदा निरमाइलु
आपे आपु उपाइदा ॥
अंदरि कोट छजे हटनाले ॥
आपे लेवै वसतु समाले ॥
बजर कपाट जड़े जड़ि जाणै
गुर सबदी खोलाइदा ॥
भीतरि कोट गुफा घर जाई ॥
नउ घर थापे हुकमि रजाई ॥
दसवै पुरखु अलेखु अपारी
आपे अलखु लखाइदा ॥ *अंग - 1033*

तुम्हारे अन्दर वाहिगुरू जी का निवास है, लेकिन तुम्हें इस बात का ज्ञान ही नहीं है कि तुम्हें इतनी कीमत देह प्राप्त हुई है कि जिसके अन्दर वाहिगुरू जी निवास करते हैं। गुरू जी इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

नउ दरवाजे काइआ कोटु है दसवै गुपतु रखीजै ॥ बजर कपाट न खुलनी गुर सबदि खुलीजै ॥
अनहद वाजे धुनि वजदे गुर सबदि सुणीजै ॥
तितु घट अंतरि चानणा करि भगति मिलीजै ॥
सभ महि एकु वरतदा जिनि आपे रचन रचाई ॥
अंग - 954

वाहु वाहु सचे पातिसाह तू सची नाई ॥
अंग - 947

देवता लोग इस शरीर को प्राप्त करने के बारे में क्यों सोचते हैं? यह बात ठीक है कि देवताओं को हमारी अपेक्षा अरबों गुणा सुख ज्यादा है लेकिन फिर भी वे मनुष्य योनि को प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं। इसका कारण यह है कि वे परमात्मा को देख नहीं पाते हैं। केवल मनुष्य ही है जिसे परमात्मा ने ऐसी आँख दी हुई है, जिसके द्वारा वह परमात्मा को देख सकता है। यह बात भी सत्य है कि उनके पास ज्ञान बहुत है, शक्तियाँ उनके पास बहुत हैं और इसीलिए उन्हें बहुत बड़े कहा गया है। एक प्रकार से वे इस संसार का आदि ही हैं -

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ॥
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु ॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ॥
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ॥
अंग - 7

आश्चर्यजनक बात यह है कि देवताओं को परमात्मा दिखाई ही नहीं पड़ रहा है। दरअस्ल वह केवल मनुष्य को ही दिखाई पड़ सकता है। उसके अतिरिक्त वह अन्य किसी को दिखाई ही नहीं पड़ता है। जिस प्रकार से आप सब हमारे सामने बैठे हो, इस प्रकार से मनुष्य परमात्मा को देख सकता है। मनुष्य तो परमात्मा को प्रत्येक स्थान पर या कण-कण में देख सकता है। गुरू जी का इस प्रकार से फुरमान है -

धारना - गुराँ ने मेरे ओ नैण खोल 'ते।
मैनूं सारीआँ घटाँ दे विच दिसिआ।

गुरहि दिखाइओ लोइना ॥ 1 ॥ रहाउ ॥
ईतहि उतहि घटि घटि घटि घटि
तूंही तूंही मोहिना ॥ 1 ॥ *अंग - 407*

यह बात विचार करने वाली है कि आँख तो हमारी पहले भी थी और डाक्टर कहता था कि तुम्हारी निगाह बिल्कुल ठीक है तथा इसमें तनिक सा भी कोई दोष नहीं है। न तो इसमें कोई मोतियाबिन्द है और न ही इसमे कोई अन्य दोष ही है। तुम बिल्कुल सही देख रहे हो लेकिन गुरू जी कथन करते हैं कि हमारी यह आँख तो पहले भी ठीक थी, लेकिन गुरू जी ने हमें एक और आँख दिखला दी। यथा-

नानक से अखड़ीआँ बिअंनि
जिनी डिसंदो मा पिरी ॥ *अंग - 577*

भजन बन्दगी करने वालों को पूछो कि यह आंख कौन सी है? वे कहते हैं कि यह ऐसी आँख है जिसे तीसरा नेत्र भी कहते हैं और दिव्य नेत्र भी कहते हैं। जो चीजें हमें, हमारी इन सामान्य आँखों के द्वारा नहीं दिखाई पड़ती हैं, वे सब उस दिव्य आँख के द्वारा स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। यदि वह दिव्य नेत्र खुल जाए तो उसके द्वारा परमात्मा प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ता है। वह व्यक्ति के अन्दर लगी हुई है। अन्य धर्मों को मानने वालों को भी पूछा कि प्रेमीजनो! क्या तुम लोग भी इस बात की गवाही भरते हो? वे कहते हाँ जी यह आँख तो बिल्कुल होती है और हम लोग इसे शिव नेत्र कहते हैं। इस्लाम वालों को पूछा तो वे कहने लगे कि हाँ यह तो होती ही है लेकिन उसके बारे में तभी पता चलता है, जब हम इसकी खोज करते हैं। यदि किसी को शौक हो तो ही उसे पता चल पाता है क्योंकि ये जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, इनके दरवाजे बाहर की तरफ खुलते हैं और अन्दर वाले बन्द पड़े हुए हैं। दरअस्ल यह व्यक्ति बाहर की तरफ ही देखता रहता है तथा अन्दर की तरफ तो कभी झांकता ही नहीं है -

अखीआँ वेखि न रजीआँ बहु रंग तमासे।

न तो कभी कान ही सन्तुष्ट हो पाते हैं, चाहे वे कितना ही रोना व हँसना सुन-सुन कर थक ही क्यों न जाएँ न ही हमारा नाक सुगन्ध ले लेकर ही सन्तुष्ट हो पाता है। इसका कारण यह है कि ये बाहर की ओर ही खुलते हैं और सारी जिन्दगी बाहर की ओर ही दौड़ भाग करते रहते हैं। अन्दर की तरफ तो यह मनुष्य कभी जाता ही नहीं है। यदि इसे पूछो तो यह कहेगा कि जी मैं पाँच वाणियाँ पढ़ता हूँ। ठीक है तुम पाँच वाणियाँ पढ़ लेते हो लेकिन पढ़ना एक अलग चीज है, जबकि अन्दर की तरफ जाना एक अलग चीज है। दरअस्ल गुरुमन्त्र के बल के बिना अन्दर की तरफ जा पाना नामुमकिन है। बस आम साधकगण यहीं पर रुके पड़े हैं कि मैं तो जी पाँच वाणियों का पाठ कर लेता हूँ अथवा मैं तो श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी का पाठ प्रतिदिन करता हूँ और मैं इतने अंग (पन्ने, श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के पन्नों को सम्मान की दृष्टि से अंग कहा जाता है) प्रतिदिन करता हूँ। ऐ बन्धु! यह बात तो ठीक है कि तुम यह पाठ रोज करते हो और उसका फल भी अपनी जगह पर होता है लेकिन जहाँ पर गुरू जी तुम्हें वास्तव में ले जाना चाहते हैं, वह तो बात ही कुछ और है। जब तक तुम्हारी सुरति अन्दर ही नहीं जाएगी और बाहर ही घूमती रहेगी तब तक तुम्हें कुछ भी प्राप्ति होने वाली नहीं है। यथा -

नउ घर देखि जु कामनि भूली
बसतु अनूप न पाई ॥ ***अंग - 339***

जब तक तुम्हारी सुरति अन्दर नहीं जाएगी तब तक तुम्हारी आँख नहीं खुलेगी और तुम्हें कुछ भी पता नहीं चल पाएगा। तुम केवल पढ़-पढ़कर बातें करते रहते हो लेकिन न तो तुम आन्तरिक यात्रा के लिए कोई यत्न ही करते हो और न ही तुम्हारे अन्दर कोई शौक है। पराकाष्ठा तक की अनूप वस्तु तुम्हारे अन्दर पड़ी हुई है और तुम्हें उसका ज्ञान ही नहीं है। वह वस्तु क्या है?

पहले तो आत्मा है, अपना ही स्वरूप है, फिर -

आतमा परातमा एको करै ॥ ***अंग - 661***

फिर तो कण-कण में परमात्मा ही दिखाई पड़ने लग पड़ता है। वह सूक्ष्म हस्ती जिसने सारी सृष्टि की रचना की है और जो किसी भी विधि से दिखाई ही नहीं पड़ता है, वह कण-कण में दिखाई पड़ने लग जाता है। वह कितना सूक्ष्म है, इस बारे में एक बार सारे ऋषियों-मुनियों विशिष्ठ आदि के बीच विचार चल पड़ी। वहाँ पर शिव जी महाराज भी आ गए। सबने उठकर उनका सम्मान किया और उन्हें सम्मानपूर्वक ऊँचे आसन पर बैठाया।

शिव जी महाराज कहने लगे, महापुरुषो! आप सब क्या कर रहे हो? वह कहने लगे, महाराज जी! हम सब यह विचार कर रहे थे कि यह जो चेतन तत्व है यह कितना सूक्ष्म है? आप तो हमेशा ही परमात्मा के ध्यान में रहते हैं, इसलिए आप ही कृपा करके यह बतलाओ कि वह कितना सूक्ष्म है?

शिव जी महाराज कहने लगे, देखो महापुरुषो! उसे जानते तो आप लोग भी हो लेकिन उसके बारे में कोई कुछ भी कह नहीं सकता है क्योंकि हम जो भी बात कहेंगे उससे भी आगे कुछ और भी है। यथा -

लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु ॥ अंग - 5

'चलता'

(पृष्ठ 18 का शेष)

अभ्यास के द्वारा अन्दर की शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं। गुरू जी कहते हैं कि इसके अन्दर बहुत कुछ है -

तह अनेक रूप नाउ नव निधि
तिस दा अंतु न जाई पाइआ ॥ ***अंग - 922***

इस प्रकार की बेशुमार वस्तुएँ इसके अन्दर हैं और बाहर की तरफ इसे सारी चीजें दुख देने वाली ही हैं, जिनके अन्दर कोई शन्ति नहीं है और विडम्बना यह है कि इन्हीं के अन्दर हमारी सुरति भूली हुई है। इस प्रकार से पढ़ लो -

धारना - नउ घर देखि जु कामनि भूली
बसतु अनूप न पाई ॥

इस प्रकार से हमारी जो सुरति है वह बहिर्मुखी ही रहती है और यह अन्तर्मुखी तो होती ही नहीं यानि कि यह जीव अन्दर की ओर तो जाता ही नहीं है। अन्दर के बारे में तो इसे ज्ञान ही नहीं है। यदि यह अन्दर की तरफ जाता भी है तो फिर सो जाता है। इसका कारण यह है कि इसे अपने अन्दर अन्धकार के सिवाए कुछ दिखाई ही नहीं देता है। दरअस्ल यह उन साधनों को अपनाता ही नहीं है, जिनके द्वारा इसके आन्तरिक बन्द नेत्र खुल जाएं।

'चलता'

बुनना तनना तिआगि के प्रीति चरन कबीरा।।

सन्त बाबा हरपाल सिंह

कबीर एक घड़ी आधी घरी आधी हूं ते आध ॥
भगतन सेती गोसटे जो कीने सो लाभ ॥
अंग – 1377

कबीर साकतु ऐसा है जैसी लसन की खानि ॥
कोने बैठे खाईऐ परगट होइ निदानि ॥
अंग – 1365

कबीर साकत संगु न कीजीऐ दूरहि जाईऐ भागि ॥
बासनु कारो परसीऐ तउ कछु लागै दागु ॥
अंग – 1371

कबीर मारी मरउ कुसंग की केले निकटि जु बेरि ॥
उह झूलै उह चीरीऐ साकत संगु न हेरि ॥
अंग – 1369

परम सम्माननीय गुरू प्यारी साधु संगत जी, आओ! ख्यालों को बाहर जाने से रोकें, चित्त वृत्तियों को एकाग्र करते हुए अपनी जिह्वा की पवित्रता के लिए सारे ही उच्चारण करो जी – सतिनाम श्री वाहिगुरू। गुरू महाराज जी ने कृपा की है श्री आनन्दपुर साहिब की पावन भूमि का यह इलाका, सन्त बेला रामगढ़, सतलुज दरिया का तट और पूर्णिमा की रात्रि तथा हम सभी को सत्संग करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। आज कबीर जयन्ती है यानि कि कबीर साहिब का प्रकाश दिवस है।

सतगुरू जी हमारी श्रद्धा को ही फलीभूत करते हैं जिस प्रकार की श्रद्धा रूपी झोली को लेकर हम सत्संग में आते हैं, उसी प्रकार के फल व बरकतें हमारी झोली में पड़ जाती हैं। इस घर में तो –

नानक कै घरि केवल नामु ॥ ***अंग – 1136***

हम सबने उनके ही शबद पढ़े हैं, जिनका आज दिवस मनाया जा रहा है। दरअस्ल इस प्रकार के जो ये गुरू, पीरों, भक्तों व महापुरुषों के दिवस होते हैं, ये हमारे जीवन में उत्साह भरने में समर्थ होते हैं। भक्त कबीर जी के शरीर का जन्म वाराणसी की पावन धरती पर हुआ। आपके साथ जुड़ी हुई बहुत ही अद्भुत कथा है –

हरि के सेवक जो हरि भाए तिन् की कथा निरारी रे ॥
अंग – 855

वाराणसी के अन्दर एक बहुत ही गरीब जुलाहा दम्पत्ति रहा करती थी, जिनका नाम नीरा और नीमा था, लेकिन वे निःसन्तान थे और सन्तान प्राप्ति के लिए तरसते रहते थे क्योंकि –

पुतंी गंढु पवै संसारि ॥ ***अंग – 143***

लेकिन आपकी झोली में अभी खैर (भिक्षा) प्राप्त नहीं हो पाई थी और आज कृपा हुई, फलस्वरूप एक पावन शरीर उन्हें प्राप्त हुआ जिसका नाम उन्होंने कबीर रख दिया। वह दिन आज के समान पूर्मिमा का ही था यानि कि पूर्णमाशी के दिन चन्द्रमा की रश्मियों के बीच संवत् 1455 तदनुसार सन् 1398 ई. को भक्त कबीर जी ने शरीर धारण किया। वैसे तो –

जनम मरण दुहहू महि नाही जन परउपकारी आए ॥
जीअ दानु दे भगती लाईन हरि सिउ लैनि मिलाए ॥
अंग – 749

वे तो केवल जन कल्याणार्थ ही शरीर धारण किया करते हैं। आपने शरीर भी एक ऐसी जगह पर धारण किया कि –

जिसु नीच कउ कोई न जानै ॥
नामु जपत उहु चहु कुंट मानै ॥ ***अंग – 386***

जिसे कोई भी जानता नहीं था, उस घर में आप जी ने अवतार धारण किया। जब इस प्रकार के आगमन के बारे में सुनते हैं तो –

मनि चाउ भइआ प्रभ आगमु सुणिआ ॥ अंग – 921

तो खुशी व उल्लास का होना स्वाभाविक ही है और हमारे जीवन में भी खुशियाँ आ जाती हैं तथा फिर खुशियों की कोई गिनती नहीं रहती है। यह खुशी उस दिन और भी बढ़ जाती है जिस दिन हम सचमुच ही गुरू के साथ जुड़ जाते हैं।

जहाँ पर या जिस शहर में कबीर जी का आगमन हुआ उसी वाराणसी शहर में रामानन्द गोस्वामी जी भी रहते थे, जो बीतराग अवस्ता के महात्मा थे। दरअस्ल यदि किसी ने कोई सारवस्तु ग्रहण करनी हो तो वह किसी महात्मा के माध्यम से ही प्राप्त हो पाया करती है, जो नाम बहुमूल्य वस्तु है, वह तो हमें अपने अन्दर से ही प्राप्त होता है लेकिन गुरू, पीर, आचार्य या महात्मा हमें गुरुमन्त्र देते हैं और नाम के साथ जुड़ने का माध्यम प्रदान कर देते हैं, जैसे कि हमारे घर का यानि कि गुरू घर का मन्त्र है – वाहिगुरू, जो कि पाँच प्यारों के द्वारा प्रदान किया जाता है।

उधर स्वामी रामानन्द जी का यह उसूल था कि आप

यूँ ही सरलतापूर्वक ही किसी को गुरुमन्त्र नहीं दिया करते थे। पहले जब प्रचलित धार्मिक परम्परा के अनुसार कबीर जी की सुन्नत करने लगे तो आपने मना कर दिया कि इससे कोई धार्मिक प्राप्ति कैसे हो सकती है? और फिर यदि सुन्नत करने से ही कोई धार्मिक प्राप्ति हो पाती है तो फिर औरतों की सुन्नत कैसे करोगे? यथा -

सुंनति कीओ तुरकु जे होइगा अउरत का किआ करीऐ॥ अरध सरीरी नारि न छोडै ता ते हिंदू ही रहीऐ ॥ अंग - 477

यही कारण था कि आपने इस कर्मकाण्ड को करने से साफ मना कर दिया। इसके साथ ही आपने जनेऊ पहनने से भी मना कर दिया तथा आपने तो यहाँ तक कह दिया कि -

हिंदू अंना तुरकू काणा ॥
दुहाँ ते गिआनी सिआणा ॥ अंग - 875

इधर स्वामी रामानन्द जी रसिक बैरागी महापुरुष थे और उनका जलाल ही इतना अधिक था कि उनके सामने जाना ही अत्यन्त कठिन था फिर आपने युक्ति के द्वारा उनसे मन्त्र की प्राप्ति की। दरअस्ल स्वामी रामानन्द जी ब्रह्ममुहुर्त में गंगा स्नान हेतु जाया करते थे और लगभग सभी महापुरुष ब्रह्ममुहुर्त में स्नान आदि करने के बाद, नाम के साथ जुड़ बैठा करते हैं और परमात्मा की याद में लीन हुआ करते हैं। अतः आप नित्य प्रतिदिन गंगा-स्नान के लिए जाते हैं। इधर भक्त कबीर जी गंगा स्नान वाले घाट की सीढ़ियों पर ही लेट जाते हैं। जब स्वामी रामानन्द जी स्नान के लिए सीढ़ियाँ उतर रहे थे तो आपको ठोकर लगी, जी ने उस समय ठोकर लगने पर कहा, 'उठो राम के, राम कहो'। इस प्रकार से आपको (कबीर जी को) गुरुमन्त्र की प्राप्ति हुई और आपने उस मन्त्र को सम्भाल लिया क्योंकि -

राम राम सभु को कहै कहिऐ रामु न होइ ॥
गुर परसादी रामु मनि वसै ता फलु पावै कोइ ॥
अंग - 491

इस प्रकार से आपको मन्त्र मिल गया। वैसे यह मन्त्र तो बाहर से मिलता है लेकिन यह मन्त्र सारे दुखों व रोगों को काटकर असली नाम तक पहुँचा देता है जो कि हमारे अन्दर पहले से ही मौजूद है। अब भक्त जी ने उस मन्त्र की खूब कमाई की। आप अपने गुरू के ध्यान में बैठते हैं। अब ध्यान धरने के लिए सामने कोई न कोई निशाना होना जरूरी है और इसीलिए आप अपने गुरू स्वामी रामानन्द जी का साकार ध्यान धरते हैं और आपका ध्यान धीरे-धीरे परिपक्व हो गया। अब साकार ध्यान धरने का तात्पर्य यह नहीं है कि आप साकार के पूजक बन गए बल्कि यह तो प्रतीक ध्यान होता है -

अकाल मूरति है साध संतन की
ठाहर नीकी धिआन कउ ॥ अंग - 1208

यह प्रतीक ध्यान होता है -

सफल मूरति परसउ संतन की
इहै धिआना धरना ॥ अंग - 531

शनैः शनैः ध्यान इतना परिपक्व हो गया कि -

कबीर चंदन का बिरवा भला बेड़िओ ढाक पलास ॥
ओइ भी चंदनु होइ रहे बसे जु चंदन पासि ॥
अंग - 1365

आप इसी क्रम में धीरे-धीरे प्रतीक ध्यान से सम्पत ध्यान में प्रवेश कर जाते हैं, उस समय सारे गुण भी उनके अन्दर प्रवेश कर जाते हैं, जिस प्रकार से बावन चन्दन की सुगन्ध सारी वनस्पति के अन्दर फैल जाती है, उसी प्रकार से आपके अन्दर भी सारे गुण प्रवेश कर गए, यह बात अलग है कि कई पास में रहकर भी खाली रह जाते हैं -

कबीर बाँसु बडाई बूडिआ इउ मत डूबहु कोइ ॥ चंदन कै निकटे बसै बाँसु सुगंधु न होइ ॥ अंग - 1365

कबीर साचा सतिगुरू किआ करै जउ सिखा महि चूक॥
अंधे एक न लागई जिउ बाँसु बजाईऐ फूक ॥
अंग - 1372

श्रद्धावान की झोली भरती ही है। कबीर साहिब का ध्यान धीरे-धीरे इतना परिपक्व हो गया कि एक दिन स्वामी रामानन्द जी मन्दिर के अन्दर अपने इष्ट की पूजा कर रहे हैं। आप अपने इष्ट को मुकुट पहना देते हैं, लेकिन आप उन्हें माला पहनानी भूल गए। अब यदि आप मुकुट उतार कर दोबार माला पहनाते हैं, तो उनके सम्मान में कमी आती है और यदि माला नहीं पहनाते हैं तो फिर उपासना अधूरी रह जाती है। भक्त कबीर जी मन्दिर से बाहर बैठे हुए हैं जबकि स्वामी रामानन्द जी अन्दर उपासना व पूजा कार्य में व्यस्त हैं। भक्त कबीर जी, अपने गुरू को कहने लगे, गुरू जी! आप माला के धागे की गाँठ को खोल लीजिए, आपको मुकुट उतारने की जरूरत नहीं है और माला पहना दीजिए। अब यह कितनी बड़ी भावना है कि भक्त जी बाहर बैठे हैं और गुरू जी मन्दिर के अन्दर पूजा कार्य कर रहे हैं, लेकिन भक्त कबीर जी अन्तर्ध्यान होकर सारी स्थिति को देख लेते हैं -

कबीर मनु निरमलु भइआ जैसा गंगा नीरू ॥
पाछै लागो हरि फिरै कहत कबीर कबीर ॥
अंग - 1367

भक्त कबीर जी के मन की तुलना गंगा के जल के साथ की गई है। गंगा के जल को पावन माना गया है, आपका मन भी गंगा जल की भांति निर्मल हो गया है, वह उनमन अवस्था में पहुँच गया है। फलस्वरूप अब वह तीनों लोकों की बातें करने लग पड़ा है। ध्यान जो है, वह यहीं

पर रुक नहीं जाता है बल्कि वह इससे भी आगे अहंग्रह में चला जाता है और यही ब्रह्मज्ञान की अवस्था कहलाती है -

ब्रहम गिआनी कउ खोजहि महेसुर ॥
नानक ब्रहम गिआनी आपि परमेसुर ॥ अंग - 273

मनि साचा मुखि साचा सोइ ॥ अवरू न पेखै एकसु बिनु कोइ ॥ नानक इह लछण ब्रहम गिआनी होइ ॥
अंग - 272

ब्रह्मवक्ता, ब्रह्मश्रोता व ब्रह्मनिष्ठा की दृष्टि अब आपकी हो गई है, इसलिए अब तो -

जब लगु तागा बाहउ बेही ॥
तब लगु बिसरै रामु सनेही ॥ अंग - 524

यही कारण है कि गुरू-पीरों की, महापुरुषों की नकल कर पाना असम्भव हुआ करता है -

गुरि कहिआ सा कार कमावहु ॥
गुर की करणी काहे धावहु ॥ अंग - 933

जो अपना जीवन होता है, उसे महापुरुषों के जीवन के साथ थोड़ा बहुत तालमेल के साथ रखना पड़ता है कि इस प्रकार का हो यानि कि उनके बताए हुए मार्ग पर चलना चाहिए, उनके पदचिन्हों पर चलने का प्रयास करना चाहिए।

अब भक्त जी सारा कारोबार भी करते हैं और नाम सिमरन भी करते हैं। आपका जीवन बहुत ही सरल है। आप किसी विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने नहीं गए। आपको तो अपने हस्ताक्षर भी करने नहीं आते थे। आप तो बिल्कुल निरक्षर थे, लेकिन रूहानी मार्ग में तो -

पड़िआ अणपड़िआ परम गति पावै ॥ अंग - 197

सांसारिक तौर पर तो मूल्य आंके जाते हैं -

आढ दाम को छीपरो होइओ लाखीणा ॥ बुनना तनना तिआगि कै प्रीति चरन कबीरा ॥ नीच कुला जोलाहरा भइओ गुनीय गहीरा ॥ अंग - 487

तनना बुनना सभु तजिओ है कबीर ॥
हरि का नामु लिखि लीओ सरीर ॥ अंग - 527

आपके ऊपर कितनी बड़ी कृपा हुई। दूसरी तरफ माताओं का तो यह ख्याल होता ही है कि उनके बच्चे कामकाज करें, इसीलिए कबीर की माता भी रामानन्द जी को ही अपशब्द बोलने लग पड़ी कि -

जब की माला लई निपूते तब ते सुखु न भइओ ॥
अंग - 856

कबीर की माता जी कहती हैं कि जिस दिन से ही इसने माला पकड़ी है, उसी दिन से सारा काम ही बिगड़ गया है क्योंकि अब यह मन लगाकर काम ही नहीं करता है। पहले तो चलो थोड़ा बहुत काम करता ही था। उस समय कबीर की माता क्या करती है -

मुसि मुसि रोवै कबीर की माई ॥
ए बारिक कैसे जीवहि रघुराई ॥ अंग - 524

अब कबीर जी के मन की अवस्था तो वैराग्यमयी है क्योंकि -

बिनु बैराग न छूटसि माइआ ॥ अंग - 329

वैराग्य के बिना यह जो माया है, अविद्या है, इससे छुटकारा हो पाना असम्भव है। वैद्य को बुलाया गया कि चलो वैद्य को दिखा लेते हैं। वैद्य आकर नब्ज को देखता है, उधर कबीर साहिब हँसने लगते हैं। वे कहते हैं, ऐ वैद्य! तुम्हें इस बात के बारे में कोई ज्ञान नहीं है क्योंकि -

लागी होइ सु जानै पीर ॥
राम भगति अनीआले तीर ॥ अंग - 327

यह तो मुड़े हुए नुकीले तीर हैं यदि किसी को वाणी के ये तीर लग जाएँ तो -

कबीर सतिगुर सूरमे बाहिआ बानु जु एकु ॥
लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु ॥
अंग - 1374

गुरवाणी का ऐसा तीर लगा जो कि नुकीले तीर की भांति काम कर गया -

वैद्य जी भी नब्ज देखकर कहने लगे कि इसका तो कुछ भी नहीं बिगड़ा है।

कबीर की माँ कहती है कि यदि इसका कुछ भी नहीं बिगड़ा है, तो इसकी हालत ऐसी क्यों?

कबीर जी हँसते हैं कि यह तो जिस तन को लगती है उसी को पता चलता है।

उस समय का जो काजी मौलाना और पुजारी वर्ग था, वह सारा का सारा कबीर जी के खिलाफ हो जाता है क्योंकि जन साधारण के अन्दर इनका मान-सम्मान उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था, फलस्वरूप इस वर्ग का ईर्ष्या करने लग पड़ना स्वाभाविक ही था।

एक दिन ऐसा भी हुआ कि कबीर जी के प्रति ईर्ष्या भाव रखने वाले इस पुजारी वर्ग ने दूर व नजदीक के सारे साधुओं, सन्तों व जन सामान्य को निमन्त्रण दे दिया कि कबीर साहिब यज्ञ कर रहे हैं इसलिए आप सबके उनके गृह में दर्शन देकर उन्हें कृतार्थ करें। फलस्वरूप सारे साधु सन्त व आम लोग कबीर जी के घर में आकर एकत्र हो गए। इधर कबीर जी घर से दूर जाकर समाधिस्थ मुद्रा में लीन हो गए।

अब परमात्मा ने कबीर के रूप में प्रकट होकर यज्ञ सम्बन्धी सारे कार्य सम्पन्न किए। इस प्रकार से कबीर जी की निन्दा करने वालों को अपने मुंह की खानी पड़ी। संयोगवश इसी समय में सुल्तान लोधी, जो कि कट्टर प्रवृत्ति का और कानों का कच्चा था, के कान इस पुजारी वर्ग ने

भर दिए। इसी कारण से सुल्तान लोधी ने अब कबीर जी को बुलवा लिया कि तुमने तो शरह की धज्जियाँ उड़ा दी हैं, इसलिए तुम्हें अब सजा भुगतनी पड़ेगी।

उस समय में सती प्रथा का प्रचलन था, धन्य गुरू अमरदास जी ने इस सम्बन्ध में अपनी आवाज को बुलन्द किया कि यह गलत प्रथा है, अतः इसे बन्द किया जाना चाहिए। उस समय उस महिला को, जिसका पति परलोक गमन कर चुका होता है, सारे हार श्रृंगार लगाकर जीवित ही जल कर राख बन जाना पड़ता था। इसी को सती प्रथा कहा जाता था।

कबीर साहिब ने कहा मरने से क्या डरना है -

कबीर जिसु मरने ते जगु डरै मेरै मनि आनंदु ॥
मरने ही ते पाईऐ पूरनु परमानंदु ॥ अंग - 1365

सुल्तान लोधी कहने लगा कि कबीर के गले में भारी लोहे के जंजीर बाँधकर इसे गंगा में बहा दो। इसी तरह से किया गया, सुल्तान लोधी के कर्मचारी उसे गंगा में फेंक कर आ जाते हैं। कुछ समय बाद उन्होंने क्या देखा कि कबीर जी तो राम-राम करते हुए बाजार में चले जा रहे हैं। चारों तरफ इस बात की चर्चा चल पड़ी।

इसके बाद सुल्तान ने कहा इसे हाथी के आगे फेंक दो लेकिन जब कबीर जी को हाथी के आगे फेंका गया तो वह भी आपको नमस्कारें करने लगा पड़ा यानि कि उस मस्त हाथी ने भी कबीर जी को कोई हानि नहीं पहुँचाई -

किआ अपराधु संत है कीना ॥
बाँधि पोट कुंचर कउ दीना ॥ अंग - 870

कबीर जी बोले कि हमने कौन सा ऐसा अपराध कर दिया है? लेकिन आमतौर पर ऐसा ही होता है -

भगता तै सैसारीआ जोड्ु कदे न आइआ ॥
अंग - 145

संसार की सोच तथा उनकी एप्रोच अपनी ही हुआ करती है। उनकी सोच प्रायः नकारात्मक व तंग दिल वाली ही होती है, जबकि महापुरुषों की सोच सकारात्मक व खुले दिल वाली होती है। इसीलिए संसार का व्यवहार सन्तजनों के प्रति प्रायः ऐसा ही हुआ करता है। कबीर जी तो बिना किसी भेदभाव के सबको सांझा उपदेश दे रहे हैं कि -

अवलि अलह नूरू उपाइआ कुदरति के सभ बंदे ॥ एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे ॥ लोगा भरमि न भूलहु भाई ॥ खालिकु खलक खलक महि खालिकु पूरि रहिओ स्रब ठाँई ॥ अंग - 1350

सारी सृष्टि के अन्दर तो एक ही परमात्मा विद्यमान है लेकिन हम लोग भ्रमवश आपस में असंख्य प्रकार के विवाद खड़े कर लेते हैं।

भ्रम के परदे सतिगुर खोले ॥ अंग - 385

भक्त कबीर जी ऐसा उपदेश कर रहे हैं कि प्रेमीजनो! वैसे ही राग-द्वैष में, वैर-विरोध में, काम-क्रोध में, अपने जन्म को बरबाद मत करो। इस बात पर विचार करो कि हमें यह जन्म किस चीज के लिए प्राप्त हुआ है?

गुर सेवा ते भगति कमाई ॥ तब इह मानस देही पाई॥ सो देही भजु हरि की सेव ॥ 1 ॥ भजहु गोबिंद भूलि मत जाहु ॥ मानस जनम का एही लाहु ॥ 1 ॥ रहाउ॥ जब लगु जरा रोगु नही आइआ ॥ जब लगु कालि ग्रसी नही काइआ ॥ जब लगु बिकल भई नही बानी ॥ भजि लेहि रे मन सारिगपानी ॥ 2 ॥ अब न भजसि भजसि कब भाई ॥ आवै अंतु न भजिआ जाई ॥ जो किछु करहि सोई अब सारू ॥ फिरि पछुताहु न पावहु पारू ॥ अंग - 1159

हमें यह शरीर तो सेवा व सिमरन के लिए प्राप्त हुआ है। न जाने इसका कब अन्त हो जाना है। इसलिए इसे सेवा व सिमरन के द्वारा सार्थक कर लेने में ही बुद्धिमत्ता है, आप इस प्रकार का तत्व उपदेश हमें प्रदान करते हैं। इन्सान का इरादा सदैव डांवाडोल रहता है लेकिन यह तो -

सो दिनु आवन लागा ॥ अंग - 692

हम तो प्रत्येक समय भूले ही रहते हैं -

नउ घर देखि जु कामनि भूली बसतु अनूप न पाई ॥ कहतु कबीर नवै घर मूसे दसवैं ततु समाई ॥
अंग - 339

हम तो इन नौ घरों में ही भूले रहते हैं और दसवें घर की तरफ, जहाँ पर अनूप और परम वस्तु पड़ी हुई है, चलते ही नहीं हैं। अतः -

जब लगु जरा रोगु नही आइआ ॥ जब लगु कालि ग्रसी नही काइआ ॥ जब लगु बिकल भई नही बानी ॥ भजि लेहि रे मन सारिगपानी ॥ अब न भजसि भजसि कब भाई ॥ आवै अंतु न भजिआ जाई ॥ जो किछु करहि सोई अब सारू ॥ फिरि पछुताहु न पावहु पारू॥
अंग - 1159

भक्त कबीर जी कहते हैं कि जो भी भजन-सिमरन करना है, वह अभी कर लो क्योंकि बाद में तो केवल पाश्चाताप ही कर पाओगे।

इसी क्रम में आप बतलाते हैं कि गुरू की सेवा करने वाला किस प्रकार का होता है, आप कथन करते हैं कि -

सो सेवकु जो लाइआ सेव ॥ तिन ही पाए निरंजन देव ॥ गुर मिलि ता के खुले कपाट ॥ बहुरि न आवै जोनी बाट ॥ इही तेरा अउसरू इह तेरी बार ॥ घट भीतरि तू देखु बिचारि ॥ कहत कबीरू जीति कै हारि॥ बहु बिधि कहिओ पुकारि पुकारि ॥
अंग - 1159

कबीर साहिब जी विभिन्न प्रकार की विधियों से पुकार-

पुकार कर इस तथ्य को कह रहे हैं क्योंकि वास्तव में तो हम लोग यही करने के लिए संसार में आए हैं, लेकिन हम लोग अन्य प्रकार के कार्यों में ही अपने समय को गंवा लेते हैं -

जरा जीवन जोबनु गइआ किछु कीआ न नीका ॥
अंग - 856

जरा रोग, बुढ़ापे के रोग को कहा है, वैसे रोगी तो हम सभी हैं और रोगों का उपचार भी गुरवाणी में कथन किया गया है। आज कबीर-जयन्ती के अवसर पर हम सबको उनके वचन याद आते हैं, जिन्हें कि महापुरुष प्रायः सुनाया करते थे कि एक बार भक्त जी घर पर नहीं थे और माता लोई जी ही घर पर थे। वहाँ पर कोई राजा कुष्ठ रोग से बुरी तरह से पीड़ित था। अब राजा को कुष्ठ रोग क्यों हुआ? इसका उत्तर गुरू जी गुरवाणी के अन्दर देते हुए कथन करते हैं -

खसमु विसारि कीओ रस भोग ॥
ताँ तनि उठि खलोए रोग ॥ अंग - 1256

जब उस प्यारे के नाम को हम भूल जाते हैं, तो रोगी हो जाना स्वाभाविक ही है। राजा अपने रोग से पीड़ित होकर हाय-हाय की पुकार करता हुआ भक्त जी के घर पहुँचता है। भक्त जी घर पर नहीं थे लेकिन माता लोई जी का हृदय और भी अधिक नरम था। माता जी कहने लगे, प्रेमीपुरुष! राम-राम कहो। माता जी ने एक बार ही राम कहलवाने की बजाए राजा से तीन बार राम-राम कहलवा दिया और राजा को रोग मुक्त कर दिया। पहले तो धन्य कबीर धन्य कबीर हुआ करती थी, लेकिन आज धन्य माता! धन्य लोई माता! हो रही है। भक्त जी जब घर की तरफ लौटे तो आप बहुत हैरान हुए कि आज लोई ने ऐसा क्या कर दिया? जब आपको पता चला कि इस प्रकार की घटना घटित हुई है तो आप बहुत नाराज हुए कि तुमने तीन बार राम कहलवा कर रोगी को रोग मुक्त क्यों किया? तुमने राम के नाम को इतना सस्ता समझ रखा है? जबकि वास्तविकता तो यह है कि -

राम पदारथु पाइ कै कबीरा गाँठि न खोल ॥
नही पटणु नही पारखू नही गाहकु नही मोलु ॥
अंग - 1365

पहले तो कबीर साहिब जब घर वापिस लौटते थे तो वे माता जी को (अपनी धर्मपत्नी को) अपनी चिप्पी पकड़ाते, अपनी छड़ी पकड़ाते लेकिन आज आपने माता जी की तरफ अपनी पीठ कर ली। अब माता लोई जी बार-बार विनतियाँ करते हैं कि -

करवतु भला न करवट तेरी ॥
लागु गले सुनु बिनती मेरी ॥ अंग - 484

माता जी कहने लगे, स्वामी जी! आप मेर विनती तो सुन लीजिए -

हम तुम बीचु भइओ नही कोई ॥
तुमहि सु कंत नारि हम सोई ॥ अंग - 484

भक्त जी बोले, भाग्यवान! पहले तो यह बताओ कि तुम्हें राजा को तीन बार 'राम' कहलवाने की क्या जरूरत थी?

माता लोई जी बोले, स्वामी जी' ' वह कोढ़ी था, उसे कर्म रोग हुआ था और उसे दूर करने के लिए तो 'राम' कहलवाना ही पड़ना था। भक्त जी बोले, दूसरी बार?

मैंने दिव्य दृष्टि से देखा कि इसे किस कारण से रोग लगा है और उस कर्म का नाश करने के लिए मैंने राजा से दूसरी बार 'राम' कहलवाया।

भक्त जी ने कहा, फिर तीसरी बार क्यों कहलवाया?

माता जी बोले, स्वामी जी! प्रत्येक व्यक्ति सदैव परमात्मा के नाम को विस्मृत ही करता रहता है। अतः मैंने तीसरी बार इसे राम इसलिए कहलवाया ताकि यह भविष्य मे कभी भी 'राम' के नाम को विस्मृत न कर बैठे क्योंकि इस बात की सम्भावना फिर भी बनी रहती है कि कहीं व्यक्ति स्वस्थ हो जाने के बाद पुनः पूर्ववत् कर्मों में या भोगों में ही न पड़ जाए। अतः यह व्यक्ति भविष्य में हमेशा ही राम के नाम का स्मरण करता रहे मैंने इसलिए तीसरी बार राम कहलवाया।

वह माता लोई कितनी अधिक सयानी थी। इस प्रकार से आज की कबीर जयन्ती हमें यह सन्देश देती है हमें भी नाम के साथ जुड़ना चाहिए और गुरुमन्त्र की कमाई करके परम पद को प्राप्त कर लेना चाहिए। कबीर साहिब ने 120 वर्षों तक की लम्बी उम्र को भोगा और आपने सौ वर्ष तो लोगों से नाम ही जपाया। आपने तपस्या भी की।

अमरकंटक में आपको श्री गुरू नानक देव जी मिले, वहाँ पर 'कबीर चबूतरा' है जो कि श्री गुरू नानक देव जी और आपके मिलाप का प्रत्यक्ष उदाहरण है। उस जंगल में आपने तपस्या भी की।

श्री गुरू नानक पातशाह जी की याद में भी, जहाँ पर कि जबलपुर से जाते हुए आपने कौड़ा राक्षस का उद्धार किया था और जहाँ से नर्मदा नदी निकलती है, गुरुद्वारा साहिब की सुन्दर इमारत बनी हुई है। इस प्रकार के ऐतिहासिक प्रमाण विद्यमान हैं, जिनकी गवाही धरती दे रही है।

अतः आज का इन्सान जो रोगी है, इसका कल्याण नाम सिमरन के द्वारा ही होना है। हम सबके कल्याण के लिए ही कितना शक्तिशाली गुरुमन्त्र श्री गुरू नानक देव जी लेकर आए, उसकी कमाई करके हम नाम तक सहजता से ही पहुँच सकते हैं और फिर हमारा लोक तथा परलोक दोनों ही सँवर जाएँगे।

वाहिगुरू जी का खालसा, वाहिगुरू जी की फतहि।

सितम्बर माह के विशेष दिवस तथा पर्व

डा. जगजीत सिंह

1) दूसरी पातशाही - श्री गुरू अंगद देव जी, गुरुगद्दी दिवस 19 सितम्बर विशेष लेख - 'थापिआ लहिणा जीवदे'

गुरू अंगद देव गुरू नानक ज्योति

गुरू शरीर नहीं बल्कि ज्योति स्वरूप होता है। वाहिगुरू जी की ज्योति ही सर्वत्र प्रकाशमान है। यह ज्योति ही सारे विश्व, खण्डों व ब्रह्मांडों में जगमग कर रही है। श्री गुरू नानक देव जी इसकी गवाही भरते हुए फुरमान करते हैं -

सभ महि जोति जोति है सोइ ॥
तिस दै चानणि सभ महि चानणु होइ ॥

अंग - 13

श्री गुरू नानक देव जी स्वयं 'हरि जोति' का सम्पूर्ण रूप थे। यह कृपा उनके ऊपर धुर दरगाह से ही हुई थी। भट्ट मथुरा जी के अनुसार गुरू नानक देव जी स्वयं हरि जी की ज्योति ही थे -

जोति रूपि हरि आपि गुरू नानकु कहायउ॥

अंग - 1408

यह ज्योति दस स्वरूपों के माध्यम से सन् 1469 ई. से सन् 1708 ई. तक रूपमान होती रही। गुरू का शरीर तो बदलता रहा लेकिन गुरू की ज्योति समस्त पातशाहियों में गुरू नानक की ही चलती रही। इस प्रकार से गुरू अंगद देव जी श्री गुरू नानक देव जी की ही ज्योति थे। श्री गुरू नानक देव जी ने अपना रूप ही बदला था और गुरू नानक से गुरू अंगद हो गए थे। भाई गुरदास जी लिखते हैं -

मारिआ सिक्का जगत विच
नानक निरमल पंथ चलाया॥
थापिआ लहिणा जींवदे गुरिआई सिर छत्र फिराया॥
जोती जोति मिलाइके सतिगुर नानक रूप वटाया॥

भाई गुरदास जी, वार 1/45

यही सिलसिला आगे भी चलता रहा। गुरू अंगद देव जी ने गुरू नानक देव जी से प्राप्त हरि ज्योति को अपने शरीर का त्याग करते समय, श्री गुरू अमरदास जी के अन्दर टिका दिया -

लहिणै पाई नानको देणी अमरदास घर आई॥
गुर बैठा अमर सरूप हो गुरमुख पाई दात इलाही॥
दाति जोति खसमे वडिआई॥

भाई गुरदास जी, 1/46

मथुरा भट्ट ने इस संकल्प को सही रूप में जाना और आपने, अपने सवैये के माध्यम से इसे प्रकट किया है तथा श्री गुरू अरजन देव जी ने इस सवैये को श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के अन्दर शामिल करके स्वीकृति की मोहर इसके ऊपर लगाई है -

जोति रूपि हरि आपि गुरू नानकु कहायउ ॥
ता ते अंगदु भयउ तत सिउ ततु मिलायउ ॥
अंगदि किरपा धारि अमरू सतिगुरू थिरू कीअउ ॥
अमरदासि अमरतु छतु गुर रामहि दीअउ ॥
गुर रामदास दरसनु परसि
कहि मथुरा अंम्रित बयण ॥
मूरति पंच प्रमाण पुरखु गुरू अरजुनु पिखहु नयण ॥

अंग - 1408

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के माध्यम से प्राप्त 'सत्ता बलवंड की वार' में भी इस सिद्धान्त की पुष्टि मिलती है -

सो टिका सो बैहणा सोई दीबाणु ॥
पियू दादे जेविहा पोता परवाणु ॥ ***अंग - 968***

यही कारण है कि गुरू गोबिन्द सिंह जी गुरसिक्खों को नाम सिमरन की तरफ प्रेरित करते हुए उन्हें 'जागृत ज्योति' को जपने का उपदेश करते हैं -

जागत जोति जपै निस बासुर
एक बिना मन नैक न आनै॥
पूरन प्रेम प्रतीत सजै,
बरत गोर मड़ी मट भूल न मानै॥

इस संकल्प के अधीन सतगुरू नानक देव जी की परम्परा दस पीढ़ियों तक चलती रही। भले ही गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी गुरू अंगद देव, गुरू अमरदास, गुरू रामदास जी आदि पृथक-पृथक नामों के साथ जाने गए लेकिन सबने अपनी वाणी में 'नानक' पद का ही प्रयोग

किया। 'जोति' तथा 'जुगति' (ज्योति तथा युक्ति) दसों पातशाहियों में वही सतगुरू नानक वाली ही प्रकट होती रही-

जोति ओहा जुगति साइ सहि काइआ फेरि पलटीऐ॥
अंग - 966

श्री गुरू अंगद देव जी बारे ऐसी भावना दृढ़ करने के उपरान्त ही उनकी महानता समझी जा सकती है। गुरू अंगद देव जी लहणा रूप में, गुरू नानक देव जी के पास आए और उन्होंने तन व मन के द्वारा ऐसी सेवा की कि आप गुरू का ही रूप हो गए तथा भाई लहणा जी से गुरू अंगद जी के स्वरूप में प्रकाशमान हो गए।

जीवन - भाई लहणा जी, जैसे कि गुरू अंगद देव जी के रूप मे सामने आने से पहले जाने जाते थे, का जन्म 31 मार्च 1504 ई. को 'मते दी सरां' जिला फिरोजपुर में पिता फेरूमल जी तथा माता रामो जी के घर में हुआ। भाई फेरुमल जी देवी के उपासक थे विशेष रूप से आप ज्वालामुखी देवी के उपासक थे। उनके द्वारा परलोक गमन करने के बाद उनके पुत्र भाई लहणा जी ने यह कार्य सम्भाल लिया और ज्वालामुखी देवी जी की यात्रा निरन्तर जारी रही। सन् 1519 ई. में आप जी का विवाह, श्रीमती खीवी जी सपुत्री श्री देवी चन्द जी के साथ हुआ। इसके बाद कारोबार के सिलसिले में पहले आप 'संघर' फिर 'हरी के पत्तन' और फिर खडूर साहिब आ गए लेकिन देवी के दर्शनों के लिए आप सन् 1531 ई. तक निरन्तर जाते रहे। सन् 1532 ई. में अभी आप देवी यात्रा के लिए अपने संगियों के जत्थे की तैयारी ही कर रहे थे कि आपके जीवन में एक विशेष परिवर्तन कर देने वाली घटना घटित हो गई। ब्रह्ममुहुर्त में स्नान करने के समय आप जी को भाई जोध जी द्वारा उच्चारण की जा रही, श्री गुरू नानक देव जी की अमृतमयी पावन वाणी की मधुर सुर सुनाई दी, जिसने आपकी अध्यात्मिक अनुभूति को पुनर्जीवित कर दिया। आपके अन्दर एक मधुर झरनाहट शुरू हो गई। फलस्वरूप किसी इलाही रंग में सराबोर हुए आप भाई जोध जी के पास पहुँचे और पूछा कि वह अमृतमयी वाणी किस महापुरुष की है?

भाई जोध जी ने प्यारपूर्वक बताया कि यह अमृतमयी वाणी श्री गुरू नानक देव जी की है जो कि लम्बी-लम्बी उदासियों के बाद इस समय करतारपुर के अन्दर बिराजमान हैं। आपने वहाँ पर एक धर्मशाला स्थापित की है, जहाँ पर कि सुबह शाम संगत एकत्र होती है। ब्रह्ममुहुर्त मे जपुजी साहिब का पाठ होता है, नाम सिमरन का अभ्यास होता है, शाम को रहिरास तथा साहिले का पाठ होता है। धार्मिक विचारें होती हैं, शंकाओं की निवृत्ति होती है और उनके अमृतमयी वचन सुनकर, हृदय शान्त व तृप्त होता है। गुरू नानक देव जी नाम सिमरन के साथ-साथ मेहनत के द्वारा जीविकोपार्जन को बहुत जरूरी समझते हैं। आप जी स्वयं खेती करते हैं और दूसरों को सच्ची किरत करने के लिए प्रेरित करते हैं। आप प्यार का सागर हैं। सभी छोटे व बड़े, अमीर व गरीब उनके प्यार के पात्र बनकर नाम रूपी अमृत सरोवर में डुबकियाँ लगाकर आनन्दित होते हैं। भाई लहणा जी जैसे-जैसे गुरू नानक देव जी की प्रशंसाओं को श्रवण करते गए वैसे-वैसे उनकी अर्न्तात्मा में ठंडक पड़ती चली गई और उनकी सुरति गुरू चरणों के साथ जुड़ती चली गई। अब उनके अन्दर गुरू-दर्शनों की लालसा जागृत हो उठी, फलस्वरूप आपने गुरू जी के दर्शन करने का निश्चय बना लिया। ज्वालामुखी देवी जी के दर्शनार्थ जा रहे श्रद्धालुजनों के जत्थे को प्रस्थान करवाने के बाद आपने करतारपुर साहिब की तरफ अपना रुख कर लिया।

करतारपुर में

करतारपुर में प्रवेश करते ही खेती करते हुए गुरू नानक देव जी के साथ आपकी भेंट हो गई लेकिन आपको उससमय गुरू जी की पहचान नहीं थी। संयोगवश आपने (भाई लहणा जी ने) श्री गुरू नानक देव जी से ही, उनके घर का मार्ग पूछा।

गुरू जी की दिव्य दृष्टि इस बात की पहचान कर गई कि यह जिज्ञासु विशेष वृत्ति का मालिक है। श्री गुरू जी उन्हें अपने साथ लेकर चल पड़े और धर्मशाला के अन्दर उनका निवास करवा दिया तथा स्वयं पंच स्नाना करके गद्दी पर विराजमान हो गए। जब भाई लहणा जी ने दर्शन दीदार किए तो उनके कपाट खुल गए। साथ ही उन्होंने पाश्चाताप भी किया कि वे स्वयं तो घुड़सवार होकर गुरू घर आए जबकि गुरू जी पैदल ही चल रहे थे लेकिन गुरू जी ने अपने अमृतमयी वचनों के द्वारा भाई लहणा जी को शान्त किया तथा दुविधा से मुक्त किया।

करतारपुर साहिब में सुबह-शाम प्यार भरा व आनन्दमयी रंग बनता, प्रत्येक वर्ग व प्रेमीजन एक जगह पर एकत्र होते। वहाँ पर किसी भी जाति-पात, रूप-रंग व ऊंच-नीच का कोई भेद न होता। वहाँ सभी लोग गुरू जी की वाणी पढ़ते, सुनते व कीर्तन होता तथा गुरू जी के प्रवचन होते। झूठे वहमों व भ्रमों तथा फोकट के कर्मकाण्डों का त्याग करने की प्रेरणा होती। इसके साथ ही सारे भाईचारे को पारस्परिक मेल-मिलाप, प्यार व स्वाभिमान सहित विचरण करने के लिए प्रेरित किया जाता। वहाँ पर एकत्र

होने वाली संगत के दर्शन करके भाई लहणा जी इस प्रकार से महसूस करते जैसे कि यह कोई देवी-देवताओं का इकट्ठ हो।

इस प्रकार से सच्चखण्डीय वातावरण को छोड़कर कोई जिज्ञासु कैसे जा सकता है? परिणामस्वरूप भाई लहणा जी, गुरू घर के ही होकर रह गए। उन्होंने संसार का मोह त्याग दिया और अपने सारे कारोबार को संकोचने के बाद आप पक्के तौर पर गुरू चरणों में आ बिराजे। यहाँ पर रहकर आपने अपनी सुरति, मत व बुद्धि को गुरू शब्द की टकसाल में ढाला तथा गुरू की प्यार भरी दृष्टि के पात्र बनकर निहाल हुए।

सच्ची बात तो यह है कि आपने श्री गुरू नानक देव जी की निरंकारी गुरू ज्योति को पहचान लिया था, यही कारण था कि गुरू घर की सेवा व गुरू हुक्म का पालन करने से बढ़कर उनके जीवन का अन्य कोई ध्येय नहीं था। आप जी सच्चे गुरू भक्त थे और मानवता की भावना को आत्मसात करते हुए आप पूर्ण गुरुसिक्ख बन गए। गुरू जी के प्रत्येक हुक्म को आप ईश्वरीय आदेश मानकर उसका पालन करने में ही आनन्दारितेक महसूस करते थे। कई बार इन हुक्मों का बाह्य स्वरूप अत्यन्त सख्त व दुखदाई भी हुआ करता था लेकिन फिर भी आप सहृदयता पूर्ण इसका पालन करते।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि आपने कठिन से कठिन गुरू हुक्मों की भी खिले माथे से पालना की। यदि खेत में से आप घास के गट्ठर को सिर पर उठाकर लाए और कीचड़ के कारण आपके कपड़े खराब हो गए तो माता जी को यह बात अच्छी न लगी। लेकिन गुरू जी ने वचन किया कि यह कीचड़ नहीं, केसर है। शीश पर उठाए घास के गट्ठर का बोझ कोई बोझ नहीं है बल्कि यह तो सारी मानवता का दर्द है जिसकी जिम्मेवारी लहणा जी ने अपने सिर पर उठानी है। यदि गुरू जी ने पूछा, लहणा! रात कितनी बीती है, तो आपने जवाब दिया, महाराज जी! जितनी बीती है, वह आप जी के हुक्म में बीती है और जितनी शेष है, वह भी आप जी के हुक्म में ही है। यदि गुरू जी ने आधी रात में कहा, लहणा! जाओ! कपड़े धोकर सुखा लाओ, तो आपने इस पर कोई 'किन्तु' नहीं किया कि अभी तो आधी रात है और बाहर घना अन्धकार है। आपने कपड़ों का गट्ठर उठाया और सत्य करतार कहकर कपड़े धोने के लिए चल पड़े।

श्री गुरू नानक देव जी ने किस प्रकार से भाई लहणा जी को अपने अंग के साथ लगाकर 'अंगद रूप' मे परिवर्तित किया तथा अपने जीवन-काल में ही उनके अन्दर निरंकारी ज्योति को टिका कर गुरु पद पर सुशोभित किया इसका ब्यौरा भाई गुरदास, सत्ता वलवंड तथा भट्ट सवैयों के माध्यम से प्राप्त है -

सहि टिका दितोसु जीवदै ॥ अंग - 966

थापिआ लहिणा जीवदे गुरआई सिर छत्र फिराया॥
भाई गुरदास जी

श्री गुरू नानक देव जी ने सितम्बर 1539 ई. में ब्रह्मलीन होने से पहले ही गुरू घर की सारी मर्यादा तथा गुरु-सिंहासन की सारी जिम्मेवारी गुरू अंगद देव जी को सौंप दी थी। आप जी ने इन जिम्मेवारियों का पूरी तनदेही व सयानप सहित निर्वाह किया।

गुरू अंगद देव जी के कार्य तथा वाणी

श्री गुरू अंगद देव जी सन् 1539 ई. से सन् 1552 ई. तक 13 वर्ष गुरुगद्दी पर बिराजमान रहे। सन् 1539 ई. तक सात वर्ष आप जी ने गुरू नानक देव जी के चरणों में, सेवा-सिमरन में व्यतीत किए। आप जी दिन-रात सेवा करते हुए गुरू नानक की वाणी में मस्त रहा करते थे। गुरुगद्दी पर बिराजमान होकर सौंपी गई जिम्मेवारी का आप जी ने पूरी दृढ़ता व कुशलता सहित निर्वाह किया, लंगर की प्रथा को आगे बढ़ाया जिसमें माता खीवी जी ने भी आपका पूरा साथ दिया। गुरू-मर्यादा को आप निरन्तर सुबह-शाम संगत की एकत्रता करके निभाते रहे। इस कार्य हेतु खडूर साहिब के अन्दर भी धर्मशाला का निर्माण किया गया तथा शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी प्रबन्ध किए गए।

आप जी ने गुरुमुखी अक्षरों का शोधन करके उन्हें प्रमाणिकता प्रदान की तथा इसके पढ़ने लिखने व प्रसार करने के सुन्दर प्रबन्ध किए। गुरू नानक देव जी के प्रकाश, जीवन, उनकी यात्राओं से सम्बन्धित साखियों (वत्तान्तों) के आधार पर गुरू नानक देव जी की जीवनी 'जनमसाखी' लिखवाई। आपने गुरू नानक देव जी की वाणी की पूरी चेतना सहित सम्भाल की तथा यह बहुमूल्य खजाना सन् 1552 ई. में अपने ब्रह्मलीन होने के समय श्री अमरदास जी को सौंप दिया। आप जी ने गुरू नानक देव द्वारा स्थापित पदचिन्हों पर चलते हुए गुरुगद्दी की मान मर्यादा को निभाया। आपने इस गद्दी पर अपने पुत्रों का अधिकार स्थापित नहीं होने दिया बल्कि सेवा, सिमरन व भक्ति को सामने रखते हुए इसे, गुरू अमरदास को सौंप दिया।

वाणी - आप जी ने केवल 62 श्लोक ही उच्चरित किए थे, श्लोक श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी का सम्पादन कार्य करते समय पृथक-पृथक वारों का श्रृंगार बने, जिनका विवरण इस प्रकार है -

वार सिरी राग मं. 4 - 2 श्लोक, वार माझ म. 1 - 12 श्लोक, बार आसा म. 1 - 14 श्लोक, वार सोरठि म. 4 - 1 श्लोक, वार सूही म. 3 - 11 श्लोक, वार रामकली म. 3 - 7 श्लोक, वार मारू म. 3 - 1 श्लोक, वार सारंग म. 4 - 9 श्लोक, वार मलार म. 1 - 5 श्लोक, कुल 62 श्लोक।

आप जी के श्लोकों का प्रमुख विषय गुरू भक्ति है, गुरू के बिना इन्सान की गति नहीं हो सकती है और न ही नाम की प्राप्ति हो सकती है। इसी प्रकार से गुरू के बिना न तो अध्यात्मिक उन्नति हो सकती है और न ही कोई अन्य प्राप्ति हो सकती है। गुरू कुंजी है जिसके बिना 'आत्मिक घर' का द्वार नहीं खुल सकता है -

गुरू कुंजी पाहू निवलु मनु कोठा तनु छति ॥
नानक गुर बिनु मन का ताकु न उघड़ै
अवर न कुंजी हथि ॥ ***अंग - 1237***

2) तीसरी पातशाही - गुरू अमरदास जी

ब्रहमलीन दिवस - 14 सितम्बर

संक्षिप्त जानकारी - गुरू नानक देव जी द्वारा स्थापित पदचिन्हों पर गुरू अंगद देव जी ने मान मर्यादा को निभाते हुए गुरुगद्दी को पारिवारिक अधिकार नहीं माना बल्कि सेवा सिमरन व भक्ति को सामने रखते हुए सन् 1552 ई. में अपने शरीर का परित्याग करते समय इसे अपने अभिन्न सेवक बाबा अमरदास जी को सौंप दिया। भाई गुरदास जी तथा भट्टों की वाणी से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि -

लहिणे पाई नानकों देवी अमरदास घर आई॥
गुर बैठा अमर सरूप हो गुरमुख पाई दात इलाही॥
भाई गुरदास जी, वार 1/46

72 वर्ष की आयु में आप जी 29 मार्च सन् 1552 ई. को गुरुगद्दी पर सुशोभित हुए आप जी के पिता श्री तेजबान जी वैष्णव भक्त होने के कारण, तीर्थयात्रा को ही बड़ी भक्ति मानते थे। (गुरू) अमरदास जी के जीवन के 22 वर्ष गंगा-स्नान, व्रत-पूजा व यज्ञ करते हुए गुजरे सन् 1540 ई. में हरिद्वार की तीर्थयात्रा से वापस लौटते समय एक ब्रह्मचारी जी ने आप से पूछा कि आप जी का गुरू कौन है? 'अभी तो खोज रहा हूँ' यह जवाब सुनकर उसने कहा -

निगुरे का संग, जनम गिआ तेरा।
किस का संग कीआ, रे मन मूरख।
भाई संतोख सिंघ जी

यह चेतावनी भरे शब्द सुनकर आपका हृदय बिंध गया। इसके बाद पुत्रवधु अमरो के मुख से मीठी वाणी सुनकर आपका मन द्रवीभूत हो उठा। इसके बाद आप श्रीमती अमरो जी के साथ खडूर साहिब पहुँचे और श्री गुरू अंगद देव जी के चरण स्पर्श किए तथा अपना सारा शेष जीवन उन्हें अर्पित कर दिया। आपके द्वारा की गई सेवा व सिमरन से प्रसन्न होकर श्री गुरू अंगद देव जी ने आपको 12 वरदान दिए। स्वाभिमान रहित लोगों के स्वाभिमान, बिना स्थान वालों के स्थान, बिना सहारा वालों के सहारा, बलहीनों के बल, बिना पक्ष वालों के पक्ष आदि आपने बारह वरदान प्रदान करते हुए आपको गुरुगद्दी पर सुशोभित किया। सन् 1552 ई. से सन् 1574 ई. तक 22 वर्ष आप जी ने यह सेवा निभाई तथा इस दौरान मानवता के कल्याणार्थ अनेकानेक कार्य किए।

3) चतुर्थ पातशाही गुरू रामदास जी

ब्रह्मलीन दिवस - 1 सितम्बर तथा गुरुगद्दी पर्व - 11 सितम्बर

आप जी का जन्म सोढी हरिदास जी के गृह में चूना मण्डी लाहौर में सन् 1534 ई. को हुआ। अभी आप जी के शरीर की आयु 7 वर्ष की ही थी कि पहले आपकी माता जी और थोड़े समय बाद पिता जी परलोक गमन कर गए। इसके बाद आप जी घुंघणियाँ बेचकर अपने घर का निर्वाह करते रहे। कुछ समय बाद आप अपनी ननिहाल में गांव 'बासरके' आ गए जो कि गुरू अमरदास जी की जन्मभूमि है। यहाँ पर आप भाई जेठा जी के तौर पर जाने गए। बाबा अमरदास जी की संगत में रहकर आप जी आत्मिक रंग में रंगे गए। गोइन्दवाल साहिब में आप जी बाबा अमरदास जी के सान्निध्य में ही रहे तथा दिन-रात सेवा व सिमरन का रूहानी आनन्द उठाते रहे। सन् 1552 ई. में श्री गुरू अंगद देव जी ने गुरुगद्दी (गुरू) अमरदास जी को सौंप दी। बाइस वर्षों तक ऐसी सेवा और गुरू-भक्ति भाई जेठा जी ने तीसरी पातशाही के प्रति की कि जिसके फलस्वरूप श्री गुरू अमरदास जी ने अपने सिक्खों व पुत्रों को एक तरफ करते हुए गुरू-ज्योति के अधिकारी भाई जेठा जी को सन् 1574 ई. में गुरुगद्दी पर सुशोभित कर दिया, इसके बाद आपको श्री गुरू रामदास जी के नाम के रूप में सम्मान प्राप्त हुआ-

बैठा सोढी पातिशाह रामदास सतिगुरू कहावै॥
भाई गुरदास जी

राजु जोगु तखतु दीअनु गुर रामदास॥ (भट्ट)

आप जी ने सात वर्षों के गुरू-काल में असंख्य सेवाएँ कीं। अमृतसर शहर की स्थापना, अमृत सरोवर की सेवा तथा हरिमन्दिर साहिब का संकल्प प्रमुख हैं। आप जी श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी में प्राप्त 31 रागों में से जैजावन्ती राग के अतिरिक्त अन्य 30 रागों में गुरवाणी का उच्चारण किया है। श्री गुरू रामदास जी ने सन् 1581 ई. में (गुरू) अरजन देव जी को 'गुरू अरजनु सच सिरजणहारा' जानकर गुरुगद्दी पर सुशोभित किया तथा स्वयं ब्रह्मलीन हो गए।

गुरसिक्ख मधुर स्मृतियां

1) यादगार बाबा बिधीचन्द जी

2) यादगार बाबा बुड्ढा जी

3) यादगार बाबा कन्हैया जी

भाई विधी चन्द जी (मधुर स्मृति 6-7 सितम्बर)

गुरू अरजन देव जी की शहादत के बाद गुरू हरिगोबिंद साहिब जी ने मीरी व पीरी (भक्ति व शक्ति) की दो तलवारें पहनीं, अकाल तख्त का सृजन किया, दरबार साहिब के सन्मुख दो निशान साहिब झुलाकर सिक्खी को सन्त-सिपाही का स्वरूप प्रदान करते हुए भक्ति व शक्ति का सुमेल कर दिया। आपने जुल्म की जड़ उखेड़ने के लिए हुक्मनामे जारी कर दिए तथा हथियारों व जवानियों की माँग की। सिक्खों ने भी हुक्मनामों को मानते हुए गुरू जी की तरफ विशाल संख्या में प्रस्थान कर दिए। विधी चन्द ने भी इसी सेवार्थ अपना तन व मन गुरू जी को अर्पित कर दिया। आप जी एक विशाल कद-काठी वाले थे तथा दलेरी में तो उनके सदृश्य कोई विरला ही रहा होगा। जब छठे महाराज जी ने युवा गुरसिक्खों की माँग की तो सुर सिंह गाँव के 52 दर्शनीय योद्धाओं को साथ लेकर आप गुरू दरबार में पहुँच गए। गुरू जी ने शरण में आए योद्धाओं को पाँच जत्थों में विभक्त कर दिया, जिनमें से एक जत्थे की सरदारी आपने विधीचन्द को प्रदान की। जब गुरू जी ग्वालियर के किले में थे तो आप जी की प्रेरणा के फलस्वरूप गुरसिक्खों की टोलियाँ शबद पढ़ते हुए ग्वालियर पहुँचती तथा परिक्रमा करके वापिस लौटतीं। ग्वालियर के किले में से रिहाई के बाद भाई बिधीचन्द जी ने आपके निजी अंगरक्षक की सेवा निभाई। मुगलों के साथ लड़े गए युद्धों में आपकी बहादुरी के किस्से आज तक प्रसिद्ध हैं। जब काबुल की संगत ने बतलाया कि भाई करोड़ीमल गुरू जी के लिए दो घोड़े गुरबाग तथा दिलबाग ला रहा था लेकिन लाहौर की सीमा में अनायत उल्ला खान ने उन घोड़ों को करोड़ीमल से छीन लिया है तो गुरू जी ने उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए कहा कि करोड़ीमल की भेंट को विधीचन्द स्वयं ही ले आएगा। ऐसा ही हुआ। भाई विधीचन्द जी, गुरू घर तथा सिक्खों के स्वाभिमान को कायम रखने के लिए घोड़ों को वापिस लाने के लिए चल पड़े। बड़ी ही होशियारी व योजनाबद्ध ढंग से आप जी अनायतउल्ला खान के कर्मचारियों को एक कमरे में बन्द करके तथा घोड़े समेत किले की दीवार से छलांग लगाकर, पत्तन से होते हुए, गुरू जी के पास पहुँच गए। इसी प्रकार से उसने दूसरा घोड़ा भी लाकर गुरू जी के चरणों में हाजिर कर दिया। गुरू साहिब जी ने भाई बिधीचन्द को अपनी छाती से लगाते हुए फुरमान किया - विधीचन्द छीना, गुरू का सीना। भाई बिधीचन्द जी अपने सारे जीवन को गुरू चरणों में बिताने के बाद भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की तृतीया को संवत् 1635 में ब्रह्मलीन हो गए।

बाबा बुड्ढा जी (ब्रह्मलीनता - 18 सितम्बर)

सिक्ख जगत में बाबा बुड्ढा जी, अत्यन्त सम्माननीय गुरसिक्ख के तौर पर जाने जाते हैं, जिन्हें कि पहली पातशाही श्री गुरू नानक देव जी से लेकर छठी पातशाही श्री गुरू हरिगोबिन्द साहिब जी तक छः गुरू साहिबानों के दर्शन दीदार व रूहानी संगत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपका जन्म अक्टूबर 1506 ई. में कत्थूनंगल, जिला अमृतसर में हुआ। माता-पिता ने आपका नाम 'बूड़ा' रखा लेकिन श्री गुरू नानक देव जी के साथ भेंट व वचन-बिलास करने के बाद आपका नाम बुड्ढा जी पड़ गया। आप जी की आयु अभी लगभग बारह वर्ष की रही होगी कि जब भैंसियों को चराते समय आपका मिलाप श्री गुरू नानक देव जी के साथ हो गया। शनैः शनैः आपका प्रेम गुरू जी के साथ इतना बढ़ा कि आप नित्य प्रतिदिन गुरू जी के लिए दूध लाकर उनकी सेवा करने लग पड़े। वचन बिलास करते समय आप गुरू जी के साथ काफी विचित्र बातें किया करते जैसे कि आप गुरू जी से विनती करते कि आप मुझे मृत्यु के दुख व भय से बचाओ, चौरासी लाख योनियों के चक्रव्यूह से बाहर निकालो, मृत्यु का क्या भरोसा है कि वह कब आ जाए? इस प्रकार के प्रश्नों को सुनकर गुरू जी कहने लगे, भाई बूड़ा! वैसे तो तुम अभी बच्चे हो लेकिन बातें बुड्ढों वाली करते हो इसलिए तुम बच्चे नहीं बल्कि बड्ढे हो। बेटा जी! तुम यूँ समझ लो कि परमात्मा, मृत्यु से कहीं अधिक बड़ा व शक्तिशाली है, तुम उसके बन जाओ, फिर मृत्यु तुम्हारा कुछ

(शेष पृष्ठ 43 पर)

नूरानी मिलाप - 14

(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

(श्री गुरू नानक देव जी महाराज जी के 550 वर्षीय प्रकाश शताब्दी को समर्पित)

मै मूरख की केतक बात है कोटि पराधी तरिआ रे॥
गुरु नानकु जिन सुणिआ पेखिआ से फिरि गरभासि न परिआ रे ॥ (अंग - 627)

अपनी समस्त शक्तियों का त्याग करके, वाहिगुरू जी की शरण में पड़ जाना तथा अरदास में जुड़ना, यही जीवन का सार है।

आज वह समय आ गया जब इलाही नूर श्री गुरू नानक देव जी ने तलवंडी से विदायगी लेकर सुल्तानपुर का भाग्योदय करना है तथा नवाब साहिब के मोदीखाने में एसी बरकतें डालनी हैं कि वहाँ से प्रत्येक व्यक्ति अपनी झोलियाँ भर कर ले जाए (जो जीव आवै सो राजी जावै) अब यहाँ पर परमात्मा ने दयावान व कृपावान होकर प्रत्यक्ष दर्शन करने हैं।

श्री गुरू जी द्वारा सुल्तानपुर के लिए रवाना होने से पहले घर का माहौल भी अजीबो गरीब था। पूरी तलवंडी में प्यार व वैराग्य का माहौल बना हुआ था। प्यार की मूर्ति राए बुलार, ममता की भरी हुई माता तृप्ता तथा माता सुलक्षणी जी के अन्दर विरह व्यथा व वैराग्य है। सुल्तानपुर के लिए रवाना होने से पहले श्री गुरू जी ने अपने हाथ की अंगूठी तथा पीतल का लोटा भी किसी जरूरतमन्द को उसकी गरीबी दूर करने के लिए प्रदान कर दिया। सुखों को प्रदान करने वाली माता सुलक्षणी ने बिछोड़ों के दर्द को खोलते हुए अपने हार्दिक भाव इलाही नूर के साथ सांझे किए और फुरमान किया कि हे मेरे सिर के साईं! यदि आप घर में बैठे होते हो तो मेरे लिए सारे संसार की पातशाही है लेकिन अब यह सारा संसार मेरे लिए उजाड़ ही प्रतीत हो रहा है।

कबीर जह जह हउ फिरिओ कउतक ठाए ठाइ ॥ इक राम सनेही बाहरा उजरू मेरै भाँइ ॥

अंग - 1365

क्योंकि उस सतवन्ती के लिए सारा संसार एक तरफ और श्री गुरू नानक देव जी का प्यार एक तरफ है।

प्रत्येक पतिव्रता स्त्री के लिए उसके पति की उपस्थिति उसके लिए अमूल्य होती है और फिर गुरू नानक देव जी तो सारे संसार के स्वामी हैं। इलाही नूर ने उपर्युक्त वचन सुनने के बाद अपनी धर्मपत्नी (माता सुलक्षणी जी) का ढाढ़स बँधाते हुए फुरमान किया कि हम तो यहाँ भी उदास भाव में ही रहते थे क्योंकि यहाँ पर भी अन्तर्मुखी तौर पर ही विचरण करते थे, इसलिए आपके लिए तो परदेश और घर एक समान ही होना चाहिए।

वास्तव मे इलाही नूर किसी एक जगह को ही प्रकाशवान करने के लिए नहीं थे, बल्कि उन्होंने तो सारे संसार की अन्धकारयुक्त जगहों को प्रकाशित करना था और उन्होंने तो अनेकों बिछुड़ी हुई जीव रूपी स्त्रियों को परमात्मा रूपी पति के साथ मिलाना था तथा जगत-जलन्दे को ठंडक प्रदान करनी थी।

इलाही नूर ने बिछुड़ने से पहले दया के घर में आकर प्रसन्नतापूर्वक आशीष प्रदान की कि आप चिन्ता मत करो, दिन प्रतिदिन आपकी पातशाही ही होगी लेकिन उनका ढाढ़स कहाँ बँध पा रहा था? प्यार की गर्माहट बिछोड़े में से नहीं अपितु मिलाप में से प्राप्त होती है। उन्होंने श्री गुरू जी के साथ ही चलने की पेशकश की लेकिन इलाही नूर ने उन्हें दिलासा दिया कि परमात्मा की रजा में अब तो मैं अकेला ही जाता हूँ लेकिन यदि अच्छा रोजगार मिल गया तो आपको भी वहीं पर बुला लेंगे।

अब दयावान व कृपावान सतगुरू जी, अपने निजी घर को छोड़कर सारे संसार के कल्याणार्थ प्रस्थान करने के लिए तैयार हैं। परमात्मा की परमात्मा ही जाने कि उसने इस इलाही नूर के द्वारा जन-कल्याणार्थ कौन-कौन से कार्य करवाने हैं? और किस किस का उद्धार करवाना है?

विदायगी से पहले, प्यार की मूर्ति राए बुलार जी ने समस्त सत्संगियों को बुलाकर सत्संग करवाया, कीर्तन हुआ

तथा लंगर चले। प्यार से लबालब भरे हुए मन के द्वारा राए बुलार जी ने वचन किया कि हे इलाही नूर! मेरा शरीर वृद्ध है, न जाने कब मेरे लिए बुलावा आ जाए -

नह बारिक नह जोबनै नह बिरधी कछु बंधु ॥
ओह बेरा नह बूझीअै जउ आइ परै जम फंधु ॥
अंग - 254

कालु बिआलु जिउ परिए डोलै मुखु पसारे मीत ॥
आजु कालि फुनि तोहि ग्रसि है समझि राखउ चीति॥
अंग - 631

इसलिए आप मुझे यह वचन देकर जाओ कि कहीं ऐसा न हो कि दोबारा अपने शरीरों का मिलाप हो ही न पाए और ईश्वरीय हुक्म घटित हो जाए।

सारी सृष्टि के स्वामी जी ने मुस्कुरा कर कहा कि राए जी! अपने सारे बल का त्याग करके उसकी शरण में पड़ जाओ और अरदास में जुड़ो -

जा तू मेरै वलि है ता किआ मुहछंदा ॥ ॥
तुधु सभु किछु मैनो सउपिआ जा तेरा बंदा ॥
अंग - 1096

यही हमारा सार वचन है। इस तरह की बख्शीशें करते हुए इलाही नूर जी तलवंडी से सुल्तानपुर के लिए प्रस्थान कर गए। इस प्रकार के समस्त मिलाप हम सबके लिए प्रेरक तथा दिशा निर्देशक हैं। हम सबके अन्दर भी इन प्रेम भरे मिलापों के वचनों को पढ़ व सुनकर सच्चे पातशाह जी के ये यादगारी पल हमारे मन को भी अपने प्यार की तरफ आकर्षित करने की शक्ति रखते हैं। इलाही नूर हम सबको भी अपने नूर के द्वारा शरशार करेंगे। अपने प्यारों के ऊपर अपनी प्रेम भरी दृष्टि को रखना उनका बिरद ही है -

अपुने सेवक की आपे राखै आपे नामु जपावै ॥
जह जह काज किरति सेवक की तहा तहा उठि धावै॥
अंग - 403

(पृष्ठ 41 का शेष)

भी बिगाड़ नहीं पाएगी। इस प्रकार से गुरू जी की संगत करने के कारण आपका नाम बूड़ा जी से बुड्ढा जी और उसके बाद बाबा बुड्ढा जी के तौर पर प्रसिद्ध हो गया। उन्होंने गुरू जी के उपदेश को यानि कि 'किरत करो', 'नाम जपो' और 'मिल बाँट कर ग्रहण करो' के सिद्धान्त को सही अर्थों में जीकर दिखलाया। गुरू जी आपकी सेवा और प्यार पर इतने प्रसन्न हुए कि जब उन्होंने गुरुगद्दी (गुरू) अंगद देव जी को सौंपी तो 'गुरु पद' प्रदान करने की रस्म बाबा बुड्ढा जी के द्वारा ही अदा करवाई। इसके बाद छः गुरू साहिबानों तक गुरुगद्दी प्रदान करने की रस्म बाबा बुड्ढा जी ही अदा करते रहे और इस प्रकार से गुरू-घर के अन्दर आपका मान-सम्मान सदैव ही बना रहा। श्री दरबार साहिब के अन्दर श्री गुरू अरजन देव जी ने श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी का प्रथम प्रकाश करके आप जी को पहला ग्रन्थी होने का गौरव प्रदान किया। दरबार साहिब में शाम के समय संगत के द्वारा चौकियाँ बना कर शबद पढ़ने का रिवाज आपने ही आरम्भ किया। जब आप जी ने अपने अन्तिम समय को अपने पास आता हुआ देखा तो आपने गुरू-दर्शनों के लिए अरदास की फलस्वरूप श्री गुरू हरिगोबिन्द साहिब जी ने आपको दर्शन प्रदान किए और इसके बाद 14 मार्गशीष संवत् 1688 को सच्चखण्ड में जा बिराजे।

भाई कन्हैया जी (मधुर स्मृति 18-20 सितम्बर)

सिक्ख इतिहास के अन्दर भाई कन्हैया जी का विशेष नाम व स्थान है। आप जी सेवा, परोपकार, मेहनत व त्याग की मूर्ति थे। इन्हीं गुणों के कारण आपजी श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी का कृपा के पात्र बने। गुरू घर की प्रत्येक प्रकार की सेवा में आप अग्रणी रहते लेकिन एक अद्वितीय सेवा के कारण उन्हें गुरू जी ने अपने सीने से लगाकर भरपूर प्यार किया तथा बेशुमार आशीषें प्रदान कीं। युद्ध के मैदान में आपकी सेवा घायलों को पानी पिलाने की थी। युद्ध के मैदान में जूझते हुए गुरसिक्ख योद्धाओं ने देखा कि बिना भेदभाव के भाई कन्हैया जी दुश्मन सेनाओं के जख्मी सिपाहियों को भी पानी पिला रहे हैं और उन्हें पुनः सहारा देकर खड़ा कर रहे हैं और उन्हें दोबारा लड़ने के योग्य बना रहे हैं तो फिर उन्होंने गुरू दशमेश जी के पास उनकी शिकायत की। गुरू जी ने भाई कन्हैया जी को अपने पास बुलाकर पूछा कि क्या यह बात ठीक है? भाई कन्हैया जी जवाब के तौर पर कहने लगे, महाराज जी! मुझे तो इस बात के बारे में कुछ भी पता नहीं है क्योंकि मैंने तो जब भी किसी को पानी पिलाया है तो प्रभु जी को ही पिलाया है क्योंकि मुझे तो प्रभु जी के बिना अन्य कोई दिखाई पड़ता ही नहीं है। गुरू जी ने प्रसन्न होकर उन्हें अपने गले के साथ लगाया तथा एक मरहम की डिब्बी भी उन्हें सौंपते हुए कहा कि आज के बाद प्रभु जी को केवल पानी ही नहीं पिलाना है अपितु उनके जख्मों पर मरहम-पट्टी भी कर दिया करो। आपकी इस प्रकार की सेवाओं के कारण ही भाई कन्हैया जी को रैड क्रास संस्था का जन्मदाता कहा जा सकता है।

ईश्वर अमोलक लाल

रचना: सन्त ईशर सिंह जी - राड़ा साहिब

प्रभु प्राप्ति

प्रभु प्राप्ति के लिए किसी विदेश या पर्वतों अथवा जंगल आदि में जाना नहीं पड़ता है बल्कि उसे अपने अन्दर ही खोजना पड़ता है। वाहिगुरू रूपी वस्तु प्रत्येक शरीर के अन्दर ही बिराजमान है लेकिन उसकी तलाश मन की शुद्धि और एकाग्रता के बिना नहीं हो सकती है, इसलिए -

3. मन की पवित्रता तथा एकाग्रता

आवश्यक है जो कि गुरू-सेवा और वाहिगुरू-भक्ति द्वारा ही प्राप्त होती है तथा सेवा और भक्ति किसी महापुरुष या गुरू की शरण में आकर ही हुआ करती है। गुरू की शरण, सत्संगत के माध्यम से प्राप्त होती है और सत्संगत उत्तम भाग्यों की बदौलत ही प्राप्त हो पाया करती है।

वडभागी साधसंगु परापति तिन भेटत दुरमति खोई॥ ***अंग - 617***

बिनु भागा सतसंगु न लभै
बिनु संगति मैलु भरीजै जीउ॥ ***अंग - 96***

चौरासी लाख योनियों में से मनुष्य शरीर दुर्लभ है इसलिए जब सत्संग प्राप्त हो जाए तो परमार्थ का रास्ता सुलभ हो जाया करता है और महापुरुषों की संगत के द्वारा प्रभु-प्राप्ति सरलता से ही हासिल हो जाया करती है।

संसार के कार्य युक्ति के माध्यम से बहुत ही आसान हो जाया करते हैं लेकिन बिना युक्ति से वही कार्य बहुत मुश्किल हो जाते हैं। ठीक इसी प्रकार से वाहिगुरू जी की प्राप्ति के लिए भी युक्ति की आवश्यकता है न कि इसे बलात्पूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। महापुरुष, जिन्होंने इस कार्य को सरलता से ही सिद्ध किया हो, उनके द्वारा सेवा और भजन की युक्तियाँ, पात्र या योग्य लोगों को सफलता प्रदान करने में बहुत ही सहायक होती हैं।

नानक सतिगुरि भेटिऐ पूरी होवै जुगति ॥
हसंदिआ खेलंदिआ पैनम्दिआ खावंदिआ विचे होवै मुकति ॥ ***अंग - 522***

4. नाम सिद्धान्त

4. करोड़ों आस्तिक ग्रन्थों का सार चार ही बातें हैं।

1) कर्म, 2) उपासना, 3) ज्ञान, 4) विज्ञान

यह जीवात्मा, परमात्मा की अंश होने के कारण, परमात्मा का पुत्र है, आत्मिक शहजादा है लेकिन अज्ञानता के फलस्वरूप यह अपने आपको भूल गया है। इस मनुष्य रूपी शरीर में आकर साधु संगत और गुरू कृपा के द्वारा स्वयं को जानकर और अपना तथा परमात्मा का वास्तविक और पक्का सम्बन्ध जानकर, उसके अन्दर ही मिलकर परम सुखी और शान्त होना है। व्यक्ति के अन्तःकरण में तीन दोष हैं जो कि अपने वाहिगुरू जी से बिछोड़ा डाल रहे हैं अन्यथा वाहिगुरू जी तो अपने हाथों की अपेक्षा भी नजदीक है। सबका अपना आप है। ये तीन दोष हैं -

1) मल, 2) विषशेप, 3) आवरण

यदि इन तीनों दोषों को दूर कर दिया जाए तो वाहिगुरू जी का दीदार और मिलाप उसी समय हो जाता है। इन्हें दूर करने का यत्न है -

1) कर्म, 2) उपासना, 3) ज्ञान

बुरे कार्यों को छोड़कर, जो कि मल रूप हैं और जिनके फलस्वरूप मन मैलयुक्त हो रहा है, अच्छे कार्यों में प्रवृत्त होना।

5. मन की शुद्धता

बुरे कार्य हैं - शराब, माँस, पराई स्त्री या पुरुष, जुआ खेलना, चोरी करनी, झूठ बोलना, दगा करना, रिश्वत लेनी आदि बहुत ही बुरे कार्य करने हैं। इनसे बचकर अच्छे कार्यों में प्रवृत्त होना। दान करना, सबेरे उठकर स्नान करना, सेवा करनी, दातुन करके शौच आदि करनी, शरीर की शुद्धि करनी, ब्रह्मचर्य धारण करना आदि कर्म मन को शुद्ध और साफ कर देते हैं। शुद्ध मन ही भजन-पाठ में स्थिर हो सकता है तथा एकाग्रता का आनन्द ले सकता है।

कबीर जा कउ खोजते पाइओ सोई ठउरू ॥
सोई फिरि कै तू भइआ जा कउ कहता अउरू ॥ ***अंग - 1369***

जिस समय अन्तःकरण की शुद्धि और एकाग्रता के द्वारा आत्म-खोज की जाती है, उस समय जिस वाहिगुरू को पहले और कहता था, वह तो अपना ही रूप निकलता है बल्कि तमाम दृश्य भी अपना आप ही प्रतीत होता है। दृष्टा और दृश्य एक रूप ही प्रतीत होते हैं। द्वैत भावना पूर्णतः समाप्त हो जाती है। केवल चिन्ह मात्र चिदाकाश, अद्वैत और केवल केवली ही शेष रह जाता है।

6. मन की एकाग्रता

शुभ निष्काम कर्म, मन की शुद्धि का साधन हैं। इसके बाद मन की एकाग्रता का शौक उत्पन्न होता है। उपासना मन को एकाग्र करने का साधन है। गुरवाणी का पाठ, कीर्तन और विचार भी मन को टिका देते हैं। कीर्तन में मन जल्दी ही टिक जाता है। मूलमन्त्र के पाठ भी मन को एकाग्रता के घर में ले जाते हैं। फिर सिमरन का मार्ग है जो कि जाप और अजपा दो प्रकार का होता है।

चार प्रकार की वाणी होती है -

1) बैखरी, 2) मध्यमा, 3) पसन्ती, 4) परा फिर अन्हद शब्द है।

जुबान की मदद से वाहिगुरू का जप करना बैखरी वाणी है।

कण्ठ में बिना जीभ की मदद से जप करना मध्यमा वाणी है।

नाभि में जाकर परा वाणी है।

फल - बैखरी एक गुण है।

मध्यमा उससे दस गुणा है।

पसन्ती वाणी में सौ गुणा फल है और परावाणी में बैखरी वाणी की अपेक्षा एक हजार गुणा फल है।

अनहद शब्द माथे में हो रहे हैं।

त्रिकुटी - दसवें द्वार के स्थानों को वृत्ति छोड़ती हुई सच्चखण्ड पहुँच कर अपने घर विश्राम प्राप्त करती है।

पहले गुरू के स्थूल स्वरूप में सिक्ख का अत्यन्त प्यार और श्रद्धा का होना आवश्यक है। उसी ध्यान के साथ वह गुरुमन्त्र का सिमरन करे। इस प्रकार करते हुए वृत्ति को दोनों आँखों और नाक की जड़ में टिकाए। उस जगह पर रौशनी प्रकट होगी और अनहद शब्द खुल जाएगा। इसे सुनने में वृत्ति को आनन्द प्राप्त होगा और अभ्यास करते-करते देर तक एकाग्रता बनी रहेगी तथा वृत्ति ऊपर के स्थानों के योग्य बनती चली जाएगी। सहस्रार दल कमल, त्रिकुटी, दसवां द्वार, शून्य, सच्चखण्ड स्थान तय करके अन्त में अगम्य में लीन हो जाएगी।

1) इस जीव का कल्याण भोगों और भोगों की अभिलाषा का त्याग करने में और यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति में है।

2) सारा संसार परमात्मा का रूप है, परन्तु ममता और अहंभाव के कारण कह पाना मुश्किल है। जन्म और मरण भी ममता और अहंभाव के कारण ही है।

3) जब मन गुरू जी को सौंप दें तो परमात्मा का प्रेम प्राप्त हो जाता है।

4) परमात्मा का प्रेम अवगुणों का नाश करके मुक्ति प्रदान करने वाला है।

5) जिस प्रकार से किसी के गुणों और रूप को देखे बिना प्रीति उत्पन्न नहीं होती उसी तरह से वाहिगुरू जी के गुण और रूप को देखे बिना उसके अन्दर प्रीति उत्पन्न नहीं होती है।

7. विषयों के दो स्वभाव हैं

1) अतृप्ति, 2) राग-द्वैष

यही कारण है कि विषयों में शान्ति नहीं बल्कि अशान्ति है।

प्रश्न - पुरुष को क्या करना चाहिए?

उत्तर - पुरुष को नाम चिन्तन और आत्म चिन्तन करना चाहिए।

प्रश्न - मुक्ति का साधन क्या है?

उत्तर - ईश्वर शरण और गुरू द्वारा शुद्ध अन्तःकरण में आत्म ज्ञान।

प्रश्न - नित्य पदार्थ क्या है?

उत्तर - एक ब्रह्म ही नित्य है, अन्य कोई नहीं।

प्रश्न - अनित्य पदार्थ क्या है?

उत्तर - माया और माया का कार्य संसार अनित्य है।

प्रश्न - संसार में स्तुति योग्य कौन सा पुरुष है?

उत्तर - राग-द्वैष से रहित, जीवन मुक्त पुरुष ही स्तुति योग्य है।

प्रश्न - पुरुषार्थ और प्रारब्ध किस जगह प्रधान हैं?

उत्तर - भोग में प्रारब्ध और परमार्थ में पुरुषार्थ करो।

अन्तःकरण का स्वभाव सुख व दुख है और यह समाधि रूपी पुरुषार्थ से दूर होता है।

गुरवाणी अर्थ भण्डार

सन्त हरी सिंह जी 'रन्धावे वाले'

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अगस्त, पृष्ठ - 55)

सिरीरागु महला 3
गुरमुखि किपा करे भगति कीजै
बिनु गुर भगति न होई॥

हे बन्धु! यदि गुरमुखि = मुखी गुरू कृपादृष्टि करे तो ही जीव भगति = भक्ति कीजै = करते हैं। अथवा यदि सतगुरू जी कृपा करके गुरमुखजनों की संगत प्रदान कर दें तो ही भक्ति की जा सकती है। बिना गुरू से, किसी के द्वारा भी भगति = भक्ति नहीं होई = हो सकती है, भावार्थ भक्ति तो सतगुरू जी की कृपा द्वारा भय की भावना के माध्यम से ही होती है।

आपै आपु मिलाए बूझै
ता निरमलु होवै सोई॥

हे बन्धु! सतगुरू जी जिस सिक्ख को आपै आपु = अपने निज स्वरूप में मिलाए = मिला देते हैं, वही सिक्ख वास्तविकता को बूझै = समझ पाता है अथवा सतगुरू जी आपै = अपने सिक्ख को आपु अपने स्वरूप में मिलाने वाले हैं। जो सिक्ख अपने अहंभाव को छोड़कर गुरू जी से सत्य स्वरूप के बारे में पूछता है सोई = वही मल विषशेप तथा आवरण की मैल से रहित होकर निरमलु = शुद्ध मन वाला होवै = हो जाता है अथवा निरमलु = उज्वल जीवन वाला होवै = होता है।

हरि जीउ साचा साची बाणी
सबदि मिलावा होई॥1॥1॥

हे भाई! वह हरि = परमात्मा जीउ = जी स्वयं भी साचा = सच्चा है और गुरू द्वारा उच्चरित की हुई उसकी अमृतमयी वाणी भी साची = सच्ची है अथवा सत्य स्वरूप के साक्षात्कार वाली है। इसलिए गुरू के सबदि = उपदेश द्वारा ही परमात्मा के साथ मिलावा = मिलाप होई = होता है।

भाई रे भगति हीणु काहे जगि आइआ॥

हे बन्धु! भक्ति से रहित मनुष्य काहे = किसलिए इस जगि = संसार में आया है भावार्थ जो लोग भक्ति और सिमरन नहीं करते हैं, उनका इस संसार में आना व्यर्थ है।

पूरे गुर की सेव न कीनी
बिरथा जनमु गवाइआ॥1॥रहाउ॥

जिन्होंने मनुष्य जन्म धारण करके पूरे सतगुरू की सेवा नहीं की, उन्होंने विरथा = व्यर्थ ही मनुष्य जन्म गवाइआ = गंवा लिया है, भावार्थ उन्होंने धन, पदार्थ, योग, भोग, सरदारियाँ, रुतबे आदि चाहे कितने भी प्राप्त किए हों लेकिन गुरू की सेवा के बिना अपने जन्म को व्यर्थ ही गंवा लिया है।

आपे जगजीवनु सुखदाता
आपे बखसि मिलाए॥

वह परमात्मा आपे = स्वयं ही सारे जगजीवनु = संसार का जीवन चेतन स्वरूप तथा सुखदाता = सुख प्रदान करने वाला है। वह स्वयं ही नाम द्वारा ज्ञान की कृपा करके अपने साथ मिलाए = मिलाने वाला है।

जीअ जंत ए किआ वेचारे
किआ को आखि सुणाए॥

माया द्वारा मोहित तथा कर्मों द्वारा वश किए हुए ऐ = ये वेचारे = तुच्छ जीव-जन्तु क्या कर सकते हैं, भावार्थ ये बेचारे क्या करें क्योंकि ये तो तुच्छ अल्पज्ञ हैं। ये किसी को क्या कहकर सुना सकते हैं अथवा कोई क्या कहकर किसी को सुनाए भावार्थ बिना परमात्मा से ये जीव अन्य किसके पास अपने दुख कहकर सुना सकते हैं? यानि कि किसी को भी नहीं सुना सकते हैं।

गुरमुखि आपे देइ वडाई
आपे सेव कराए॥2॥

हे बन्धु! गुरुमुखजनों को स्वयं ही परमात्मा प्रतिष्ठा व सम्मान प्रदान करता है तथा स्वयं उनसे सेवा करवा लेता है। गुरुमुख की सेवा है स्वयं नाम जपना तथा अन्य लोगों को जपाना।

देखि कुटंबु मोहि लोभाणा
चलदिआ नालि न जाई॥

यह जीव अपनी स्त्री, पुत्रादि व कुटंबु = परिवार को देखि = देख-देख कर मोहि = मोह में लोभाणा = लोभायमान हुआ रहता है लेकिन चलदिआं = अन्तिम समय में चलते वक्त कोई उसके साथ न जाई = नहीं जाता है।

सतगुरू सेवि गुण निधानु पाइआ
तिस दी कीम न पाई॥

हे बन्धु! जिन्होंने सतगुरू की सेवा करके गुण निधानु = गुणों के खजाने सतगुरू को पाया है तिस = उस परमात्मा की कीम = कीमत नहीं पाई जा सकती है। भावार्थ वह बेअन्त है।

हरि प्रभु सखा मीतु प्रभु मेरा
अंते होइ सखाई॥3॥

वह प्रभु, माता के गर्भ का सखा है और वह परमात्मा इस लोक का भी मेरा मीतु = मित्र है तथा अन्त में भावार्थ परलोक में भी वह वाहिगुरू सखाई = सहायक सिद्ध होगा।

आपणै मनि चिति कहै कहाए
बिनु गुर आपु न जाई॥

हे भाई! यदि कोई मन व चित्त के तौर पर कह भी दे कि मेरे अन्दर अहंकार नहीं है और मैं ब्रह्मज्ञानी या तत्व वेत्ता हूँ और अपने अनुसरणकर्ताओं से भी यही कहलवा दे तब भी गुरू की कृपा के बिना अहंकार समाप्त नहीं होता है, भावार्थ केवल मुँह से कह देने मात्र से ही मन के अन्दर से अहंकार नहीं जाता है, जिस प्रकार से आजकल के भेषधारी तथा धार्मिक वस्त्रों को धारण करने वाले ऊपर-ऊपर से तो गुरू के दास कहलवाते हैं लेकिन आन्तरिक तौर पर वे ममता व हंगता से भरे पड़े हुए हैं। दूसरी तरफ जिनके ऊपर सतगुरू की कृपा हो जाए उनके मनों में से अहंकार इस प्रकार से उड़ जाता है जैसे कि हवा में मुशक कपूर उड़ जाता है।

हरि जीउ दाता भगति वछलु है
करि किरपा मंनि वसाई॥

हरि जीउ = अकाल पुरख वाहिगुरू जी ही सारे जीवों का दाता है और भगति = भक्ति करने वाले भक्तों का वछलु = प्यारा है अथवा भक्तों को प्यार करने वाला है तथा स्वयं ही उसने कृपा करके उन भक्तजनों के मनों के अन्दर अपनी भक्ति को स्थापित किया हुआ है, भावार्थ वह स्वयं ही कृपा करके श्रवण मनन व निध्यासन करवाता है।

नानक सोभा सुरति देइ प्रभु
आपे गुरमखि दे वडिआई।4॥15॥48॥

सतगुरू जी फुरमान करते हैं कि उन्हें, वह प्रभु स्वयं ही भक्ति की शोभा व प्रीति की सुरति प्रदान कर देइ = देता है अथवा उनकी सुरति के अन्दर वाहिगुरू स्वयं ही यशगान व नाम की शोभा करना प्रदान कर देता है अथवा वह अपने स्वरूप की सुरति प्रदान कर देता है अथवा श्रवण, मनन व निध्यासन की शोभा तथा ज्ञान की सुरति प्रदान करता है तथा स्वयं ही गुरुमुखों को शोभा प्रदान कर देता है।

सिरीरागु महला 3
धनु जननी जिनि जाइआ
धंनु पिता परधानु॥

श्री गुरू नानक देव जी की उपमा करते हुए श्री गुरू अमरदास जी फुरमान करते हैं कि आपकी जननी = माता तृप्ता जी धनु = धन्य हैं जिनि = जिन्होंने भगत गुरू श्री गुरू नानक देव जी को जाइआ = पैदा या प्रकट किया है तथा धन्य हैं आपके पिता बाबा कल्याण चन्द जी, जिनकी साधना व पुण्य कर्मों की बदौलत आपके गृह में 1526 विक्रमी संवत् में कार्तिक माह की पूर्णिमा (सन् 1469 ई.) को कल्युग में जीवों के उद्धार हेतु परधानु = मुखी श्री गुरू नानक देव जी ने अवतार धारण किया तथा राइ भोइ की तलवंडी (ननकाणा साहिब, पाकिस्तान) की पावन धरती को भाग्यशाली बनाया तथा कल्युगी जीवों का उद्धार किया।

सतगुरू सेवि सुखु पाइआ
विचहु गइआ गुमानु॥

सतगुरू जी ने शब्द स्वरूप वाहिगुरू जी की सेवा करके पहले स्वयं आत्मिक सुख प्राप्त किया और फिर अन्य लोगों को प्रदान किया। इस प्रकार से आपके मन में लेशमात्र भी अहंकार नहीं आया। आप तो अहंकारियों के अहंकार को दूर करने के लिए आए थे, अहंकार ने आपके मन में कहाँ से आना था।

दरि सेवनि संत जन खड़े
पाईन गुणी निधानु॥1॥

जिनके द्वार पर अनेकों सन्त महात्माजन खड़े होकर भावार्थ सावधान होकर सेवनि = सेवा करते हैं वे गुणी = गुणों के निधानु = खजाने रूपी परमात्मा को पाइनि = पा

लेते हैं।

मेरे मन गुरमुखि धिआइ हरि सोइ॥

हे मेरे मन! गुरमुखजनों की संगत करके अथवा गुणों के मुख भावार्थ सन्मुख होकर हरि सोइ = उस प्रभु जी की आराधना करो।

गुर का सबदु मनि वसै
मनु तनु निरमलु होइ॥1॥रहाउ॥

जब गुरू साहिब का सबदु = उपदेश मन में बस जाएगा तो मन व तन निरमलु = उज्वल हो जाएँगे भावार्थ फिर मन के संकल्प, वासनाएँ और जन्म-जन्मान्तरों के पाप मिट जाएँगे तथा तन के अन्दर से विकार तथा अवगुणी कर्म मिट कर निर्मल हो जाएगा।

करि किरपा घरि आइआ
आपे मिलिआ आइ॥

हे बन्धु! जिनके ऊपर सतगुरू जी ने कृपा की है, उनके हृदय रूपी घर में वाहिगुरू जी आकर बस गए हैं और वह प्रभु स्वयं ही उन्हें आकर मिला है अथवा जिनके ऊपर सतगुरू जी ने कृपा की है, वही साधु संगत रूपी किले में आया है और उसे परमात्मा स्वयं ही आकर मिला है।

गुर सबदी सालाहीऐ रंगे सहजि सुभाइ॥

हे भाई! सतगुरू जी के शब्द द्वारा उस वाहिगुरू जी की सालाहीऐ = स्तुति करें ताकि वह प्रभु सहज स्वभाव ही अपने रंग में हमें रंग डाले। भावार्थ फिर किसी विशेष साधन जप, तप, हठ, धूनियाँ, ब्रत, पूजा, उपासना आदि की जरूरत नहीं पड़ती है और वह स्वयं ही अपनी कृपा करके अपने नाम में रंग देता है।

सचै सचि समाइआ
मिलि रहै न विछुड़ि जाइ॥2॥

हे भाई! जो सचै = सच्चे नाम को जप कर सचि = वाहिगुरू जी में समाइआ = अभेद हो गया है, फिर वह हमेशा ही मिलि = मिला रहै = रहता है और फिर वह बिछुड़ कर कहीं नहीं जाइ = जाता है भावार्थ फिर उसका आवागमन समाप्त हो जाता है।

जो किछु करणा सु करि रहिआ
अवरू न करणा जाइ॥

जो कुछ भी वाहिगुरू जी ने करना था सु = वह उसे कर रहा है। अवरु = अन्य किसी के द्वारा कुछ भी किया नहीं जा सकता है भावार्थ जीव तो मैं-मैं यूँ ही करता रहता है, अहंकार रूपी बिल्ली इसके अन्तःकरण रूपी कुएँ में व्यर्थ में ही पड़ी हुई है और जब तक यह अपने अन्तःकरण रूपी कुएँ में से हउमै रूपी बिल्ली को बाहर नहीं निकालता है तब तक इसका अन्तःकरण रूपी कुआँ स्वच्छ नहीं हो सकता है।

चिरी विछुंने मेलिअनु सतगुर पंनै पाइ॥

सतगुरू जी ने अपनी शरण रूपी पल्लू या लेखे में इस जीव को पाइ = डाल लिया है और इस प्रकार चिरी = बहुत लम्बे समय से विछुंने = बिछुड़े हुओं को परमात्मा के साथ मेलिअनु = मिला दिया है।

आपे कार कराइसी अवर न करणा जाइ॥

वाहिगुरू जी स्वयं ही उन जीवों से भूतकाल में भक्ति कार्य करवाता था और वर्तमान में करवा रहा है तथा भविष्य में भी करवाएगा। अवरु = अन्य किसी के द्वारा कुछ भी करणा = किया नहीं जाइ = जा सकता है। जीव तो वैसे ही झूठे अहंकार में मैं-मैं करते घूमते रहते हैं जबकि करने व करवाने वाला तो तीनों कालों में यह सत्य स्वरूप परमात्मा ही है।

मनु तनु रता रंग सिउ
हउमै तजि विकार॥

उन गुरुमुखों का मन भी तथा तन भी प्रभु जी के रंग में रता = रंगा गया है, जिन्होंने सतगुरू जी की कृपा द्वारा हउमै को तजि = त्याग दिया है।

अहि निसि हिरदै रवि रहै
निरभउ नामु निरंकार॥

वे गुरुमुखजन निरभउ = निर्भय निरंकार = परमात्मा के नाम को अहि = दिन निसि = रात हिरदै = मन में रवि = उच्चारते रहै = रहते हैं।

नानक आपि मिलाइअनु
पूरे सबदि अपार॥4॥16॥49॥

सतगुरू जी फुरमान करते हैं कि उन्हें, उसने स्वयं अपने साथ मेलाइअनु = मिला लिया है जो कि पूरे = पूर्ण सबदि = ब्रह्म, अपार = पारावार से रहित है अथवा उस पूरे सबदि = ब्रह्म रूपी अपार प्रभु ने स्वयं उन गुरुमुखजनों को अपने साथ मिला लिया है।

'चलता'

वारां भाई गुरदास
स्टीक

डा. भाई वीर सिंह जी

27. पउड़ी (गुरू सूर्योदय)

सतिगुर नानक प्रगटिआ मिटी धुंधु जगि चानणु होआ।
जिउ करि सूरजु निकलिआ तारे छपि अंधेरू पलोआ।
सिंघ बुके मिरगावली भंनी जाइ न धीरि धरोआ।
जिथै बाबा पैर धरि पूजा आसणु थापणि सोआ।
सिध आसणि सभि जगत दे नानक आदि मते जे कोआ।
घरि घरि अंदरि धरमसाल होवै कीरतनु सदा विसोआ।
बाबे तारे चारि चकि नउखंडि प्रिथमी सचा ढोआ॥
गुरमुखि कलि विचि परगटु होआ॥27॥

धुंध = गुबार (घना अन्धकार), पलोआ = दूर हो गया, बुके = गर्जना, मिरगावली = हिरणों का झुंड, थापणि = गद्दी, विसोआ = बैसाखी ढोआ = मेल, गुरमुख = मुख्य गुरू या शिरोमणि गुरू।

सतगुरू नानक देव जी जब प्रकट हुए तो अज्ञानता का अन्धकार दूर हो गया और ज्ञान का प्रकाश हो गया जिस प्रकार से सूर्योदय के होने से तारे छिप जाते हैं और अन्धेरा दूर हो जाता है। शेर की गर्जना को सुनकर जिस प्रकार से हिरणों की डार दौड़ खड़ी होती है उसी प्रकार से पाप रफूचक्कर हो जाते हैं। जहाँ-जहाँ पर बाबा (नानक देव जी) अपने चरण रखता था वहाँ पर पूजा का आसन या पूजा की गद्दी बन जाती थी। जगत के सारे प्रसिद्ध स्थान जो भी थे, वे सब नानक मते के रूप में प्रसिद्ध हो गए। भावार्थ जिस प्रकार से सिद्धों के स्थानों में नानक मता गुरू का स्थान बन गया इसी प्रकार से जगह-जगह पर गुरुद्वारा हो गया है। घर-घर में धर्मशालाएँ बन गईं और कीर्तन होने लग पड़ा, मानो कि अब वहाँ पर सदैव बैसाखी का पर्व ही मनाया जाता रहता है। बाबा जी ने चारों दिशाओं का उद्धार कर दिया, नौ खण्ड पृथ्वी में सत्य का ही बोलबाला हो गया है, कल्युग के अन्दर शिरोमणी गुरू प्रकट हो गया है।

भावार्थ - कल्युग की अत्यन्त भयानक दुर्दशा का ब्यान करके आप कथन करते हैं कि कल्युग का उद्धार करने के लिए ही श्री गुरू नानक देव जी ने अवतार धारण किया है और आप जी ने पापों के अन्धकार को दूर किया तथा चहुँओर घूम-घूम कर व अपने उपदेशों के द्वारा आपने सबको कृतार्थ किया।

28. सुमेर जाना

बाबे डिठी पिरथमी नवे खंडि जिथै तकि आही।
फिरि जाइ चड़िहआ सुमेर पर सिध मंडली दिशटी आई।
चउरासीह सिध गोरखादि मनि अंदरि गणती वरताई।
सिध पुछणि सुणि बालिआ! कउणु सकति तुहि एथे लिआई।
हउ जपिआ परमेसरो, भाउ भगति संगि ताड़ी लाई।
आखणि सिध सुणि बालिआ! अपणा नाउ तुम देहु बताई?
बाबा आखे नाथ जी! नानक नाम जपे गति पाई।

नीचु कहाइ उच घरि आई॥28॥

बाबा जी (श्री गुरू नानक देव जी) ने सारी नौ खण्डों वाली धरती का भ्रमण किया और उसके बाद आप सुमेर पर्वत पर चढ़ गए। वहाँ पर आपको सिद्धों की एक मण्डली दिखाई पड़ी। वहाँ पर गोरखनाथ आदि चौरासी सिद्ध थे। श्री गुरू नानक देव जी को देखकर उनके मन में विचार उमड़ने लग पड़े। सिद्ध आपको पूछने लगे, हे बालक! तुम्हें यहाँ पर कौन सी शक्ति लेकर आई है? (गुरू जी बोले) मैंने निरंकार के नाम का जप किया है और प्रेम भक्ति के द्वारा समाधि लगाई है। सिद्ध बोले, ऐ बालक! सुनो! पहले तो तुम हमें अपना नाम बतला दो। बाबा जी ने कहा, ऐ नाथ जी! मेरा नाम नानक है और मैंने वाहिगुरू जी का नाम जप-जपकर यह अवस्था प्राप्त की है। अपने आपको मिटाकर (अहंभाव को समाप्त करके) ही उच्चावस्था (परम पद) को प्राप्त किया जाता है।

भावार्थ - श्री गुरू नानक देव जी ने देश-देशान्तरों में बहुत अधिक भ्रमण किया और इसी श्रृंखला में आप सुमेर पर्वत पर पहुँच गए। यहाँ पर सुमेर पर्वत का तात्पर्य है कैलाश पर्वत का वह इलाका जहाँ पर कि मान सरोवर झील स्थित है। इन सिद्धों ने किसी साधारण मनुष्य के द्वारा उनके पास तक पहुँचा हुआ देखकर उनसे इसके पीछे की किसी सिद्धि की शक्ति की बात पूछी लेकिन गुरू जी ने अपने उत्तर में भी उन्हें उपदेश दिया कि हमने नाम का जप किया है और प्रेम किया है भावार्थ सिद्धियों को सिद्ध करने में समय को व्यर्थ में गंवाया नहीं है। जब सिद्धों ने गुरू जी से उनका नाम पूछा तो उस समय भी गुरू जी यह उपदेश ही दिया कि मुक्ति तो नाम का जप करने से ही प्राप्त होती है और अहंभाव का त्याग करके व नम्रता धारण करने से ही उच्चावस्था की प्राप्ति होती है। यथा -

आपस कउ जो जाणै नीचा॥
सोउ गनीऐ सभ ते उचा॥

29. सिद्धों के साथ प्रश्नोत्तर

फिरि पुछणि सिध नानका! मात लोक विचि किआ वरतारा?
सभ सिधी इह बुझिआ कलि तारणि नानक अवतारा।
बाबे आखिआ: नाथ जी! सचु चंद्रमाँ कूड़ु अंधारा।
कूड़ु अमावसि वरतिआ हउ भालणि चड़िआ संसारा।
पाप गिरासी पिरथमी धउलु खड़ा धरि हेठ पुकारा।
सिध छपि बैठे परबती कउणु जगत्रि कउ पारि उतारा।
जोगी गिआन विहूणिआ निसदिनि अंगि लगाईन छारा।
बाझु गुरू डुबा जगु सारा॥29॥

सिद्धों ने पुनः पुछा, हे नानक! भारत खण्ड में किस प्रकार का बर्ताव व आचार-व्यवहार चल रहा है? गुरू जी के कथन को सुनकर और उनके आभामण्डल को देखकर सारे सिद्धों ने यह जान लिया था कि यह कल्युग का उद्धार करने वाला नानक ही होगा। बाबा जी ने प्रश्नोत्तर के रूप में कथन किया कि हे नाथ जी! सत्य चन्द्रमा है और झूठ अन्धकार है, झूठ रूपी अमावस्या का ही सर्वत्र बोलबाला है, इसीलिए मैं इस संसार में सत्य की तलाश हेतु निकला हूँ। पाप ने सारी धरती को ग्रसित कर लिया है तथा धर्म रूपी बैल धरती के नीचे खड़ा हुआ रो रहा है। सारे सिद्ध लोग तो पर्वतों के अन्दर छिप कर बैठे हुए हैं तो फिर संसार का उद्धार कौन करेगा? योगी लोग तो ज्ञान से खाली हुए दिन-रात अपने शरीर पर राख का लेप करके घूमते रहते हैं और समर्थ गुरू के बिना सारा संसार डूबता ही जा रहा है।

भावार्थ - गुरू जी ने सिद्धों को बतलाया कि तुम लोग जो बड़े-बड़े सिद्ध पुरुष हो, पर्वतों में छिप कर सिद्धियों में मस्त हो रहे हो और योगी लोग जो कि देश के अन्दर निवास कर रहे हैं वे अपने-अपने शरीरों पर राख लगाकर ही मस्त हो रहे हैं जबकि सारे देश में पाप ही पाप व्याप्त हो चुका है और सत्य तो कहीं पर भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। गुरू के बिना संसार डूबता ही जा रहा है। इस कथन में गुरू जी ने उन्हें बताया कि तुम लोगों का यह फर्ज था कि संसार को शुभ मार्ग पर लगाते, जिसे कि तुम लोग पूरी तरह से भूल चुके हो, इस प्रकार से इस सारे क्लेश के लिए तुम लोग ही जिम्मेवार हो।

'चलता'

भाई नन्द लाल जी
गजलें

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अगस्त, पृष्ठ - 40)

चशमम हमेशा बे तू गुहर बार मी शवद
गोया मिसालि दाना कि अज खोशा-हाइ ताक।

तुम्हारे बिना मेरी आँख हमेशा इस प्रकार से मोती गिराती रहती है जैसे कि अंगूरों के गुच्छों में से दाने गिरते रहते हैं।

मन नदानम कि कुदामम कि कुदामम कि कुदामम।
बंदाइ-उ एम व उ हाफिजि मन दर रमा हाल।

मैं नहीं जानता हूँ कि मैं कौन हूँ लेकिन मैं उन परमात्मा का बन्दा हूँ और वह प्रत्येक स्थान पर मेरा रक्षक है।

साहबि हाल बजुज हरफि खुदा दम न-जनद
गैरि जिकरश हमा आवाज बवद कीलो काल।

परमात्मा के महरम परमात्मा के नाम के बिना अन्य कोई भी शब्द अपने मुँह से नहीं निकालते हैं क्योंकि उसके सिमरन के बिना अन्य सब कुछ व्यर्थ और वाद-विवाद है।

मुरशदि कामिलि मा बंदगीअत एरमाइद
अै जहे काल मुबारिक कि कुनद साहिबि हाल।

हमारे पूरे सतगुरू जी फुरमान करते हैं कि वाह! कितना मुबारक है वह शब्द, जो उसके हाल का महरम बनाता है।

चूं खुदा हाजिर असत दर हमा हाल
तू चिरा मी जनी दिगर परो बाल।

जब परमात्मा प्रत्येक स्थिति मे हाजिर नाजर है, तब तुम इधर-उधर क्यों हाथ-पैर मारते घूम रहे हो?

हमदि ह्क गो दिगर मगो अै जाँ
साहिबि काल बाश व बंदाइ हाल।

ऐ मेरी जान! तुम परमात्मा की स्तुति ही सुना करो, अन्य कुछ मत कहो, ना सिमरन वाला व्यक्ति बन जाओ, उसके हाल का महरम बन जाओ।

गैर यादि खुदा दमे कि गुजशत
ईं जवाल असत पेशि अहिलि कमाल।

परमात्मा की याद के बिना जो भी श्वास तुमने गुजारा है, पूर्ण पुरुषों की नजरों में वह व्यर्थ ही चला गया।

मा सिवा नीसत हर कुजा बीबी
तू चिरा गाफली दर ऐनि वसाल।

जहाँ भी तुम देखो उसके बिना अन्य कोई नहीं है, इतने मिलाप में तुम गाफिल क्यों होते हो?

गैर हरफि खुदा मगो गोया
कि दिगर पूच हसत कीलो मकाल।

गोया तुम परमात्मा के नाम के बिना अन्य कुछ भी न कहो क्योंकि बाकी सब कुछ तो निरर्थक है।

मा कि खुद हर बंदाइ ह्क रा खुदा फहिमीदा एम
खेशतन रा बंदाइ ईं बंदाहा फहिमीदा एम।

हमने प्रत्येक परमात्मा के बन्दे को परमात्मा ही समझा है और स्वयं को इन बन्दों का बन्दा ही समझा है।

मरदुमानि चशमि मा रा एहतिआजि सुरमा नीसत
बसकि खाकि रहि मरदुम तूतीआ फहिमीदा-एम।

हमारी आँखों की पुतलियों को सुरमे की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि हमने परमात्मा के मार्ग की धूल को ही सुरमा समझा है।

हर नफस शर बर जमीं दारेम अज बहिरे सजूद
जाँ कि रूइ यारि खुद नूरि खुदा फरहिमीदाएम।

प्रत्येक घड़ी हम अपने सिर को सिजदे के लिए धरती पर रखते हैं क्योंकि हमने अपने यार के मुख को परमात्मा का नूर समझा है।

बादशाहाँ रा फकीराँ बादशाही दादा अंद
जाँ गदाइ कूइ उ रा बादशाह फहिमीदा-एम।

फकीरो ने बादशाहों को बादशाही प्रदान की है, इसलिए उसकी गली के फकीर को हमने बादशाह समझ लिया है -

मा नमी खाहेम मुलको माल रा गोया अजाँ
साइआइ जुलफि तुरा बालि हुमा फहिमीदा एम।

ऐ गोया! हमें मुल्क तथा माल की कोई इच्छा नहीं है क्योंकि हमने तो तुम्हारी जुल्फ के साए को ही हुमा का पर

(शेष पृष्ठ 55 पर)

स्वामी राम जी के प्रेरणात्मक विचार
(Inspired Thoughts of Swami Ram)

डा. स्वामी राम जी

अनुवादक - शमशेर सिंह 'कोमल', एम. ए., एम. फिल.

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अगस्त पृष्ठ - 54)

एक बच्चा हमारे रिश्ते को पूर्ण करने का साधन है। दो लोग प्यार करते हैं, विवाह करते हैं। उनके प्यार का पौधा एक बच्चे के रूप में फलीभूत होता है। अब वे बच्चे को पढ़ाना चाहते हैं, वे बच्चे को बड़ा होते देखते हैं, बच्चा बड़ा होता जा रहा है, वह पढ़ाई कर रहा है और परिपक्व होता जा रहा है लेकिन इस सबके द्वारा उनका अपना विकास नहीं हो पाता है, फलस्वरूप उनका प्यार दूसरी दिशा की तरफ चल पड़ता है और चेतना ऊपर उठने लग पड़ती है। प्यार बहुत जल्दी ही दूसरों तक पहुँच जाता है। प्यार की यात्रा क्या है? जीवन क्या है? प्यार किसी खड़े हुए तालाब के पानी की भांति नहीं है बल्कि वह तो किसी बहते हुए दरिया के पानी की भांति है। क्या लोगों के लिए यह आवश्यक है कि प्यार को एक तालाब बनाकर उसे खड़ा कर लिया जाए और उसे पारिवारिक जीवन का नाम दे दिया जाए? लेकिन यह इस प्रकार से नहीं है। पारिवारिक जीवन का तात्पर्य है कि दूसरों को प्यार देना। हमारे जीवन का यह कदाचित तात्पर्य नहीं है कि हम अपने पड़ोसियों के प्रति ईर्ष्या की भावना रखें और उनके साथ निम्न कोटि का व्यवहार करें। परिवार के निर्माण का सारा उद्देश्य उस समय समाप्त हो जाता है जिस समय तुम सोचते हो कि हमारे पास अब एक बच्चा है, इसलिए अब मुझे उसके लिए सब कुछ चाहिए। इसी कारणवश तुम लोभी हो जाते हो लेकिन यह सोच तुम्हारे लिए लाभप्रद नहीं है। मेरा बच्चा है, इसलिए अब मुझे उसके भविष्य के बारे में सोचना चाहिए, यह सोच भी कोई लाभकारी सोच नहीं है बल्कि यह एक स्वार्थ भावना वाली सोच है।

नव विवाहित दम्पत्ति इकट्ठे होते हैं, एक दूसरे की तरफ आकर्षित होते हैं, प्यार में जुड़ते हैं, वासना के साथ जुड़ते हैं लेकिन वे एक अन्य आनन्द को नहीं जानते हैं। वास्तव में निःस्वार्थी होने का आनन्द भी अत्यन्त महत्वपूर्ण आनन्द है। कुदरत कहती है कि मैं तुम्हारी मदद करती हूँ, तुम्हें एक बच्चे का उपहार प्रदान करती हूँ, लेकिन बहुत बार जब बच्चा पैदा हो जाता है तो पिता स्वार्थी हो जाता है और घर के दूसरे कमरे में चला जाता है। पिता कह देता है कि बच्चा मुझे बहुत परेशान कर रहा है। फिर दूसरा विचार आता है जिस समय पति यह सोचता है कि मेरी पत्नी तो बच्चे का ही अधिकाधिक ध्यान कर रही है। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत सारे घटिया विचार पिता के मन में उठ खड़े होते हैं क्योंकि उसने निःस्वार्थी होना तो सीखा ही नहीं है। याद रखो कि तुम जब भी स्वार्थी होगे तो उस समय तुम्हारा विकास अवरुद्ध हो जाएगा और इसके ठीक विपरीत तुम जिस समय निःस्वार्थी होगे तो उस समय तुम्हारा विकास होगा, विस्तार होगा। पारिवारिक जीवन वास्तव में एक प्रयोग है, अनुभव है कि तुम किस प्रकार से परिवार में विस्तृत हो सकते हो, किस प्रकार से अपना विकास कर सकते हो? सबसे पहले तुम अपने पति को प्यार करते हो, पत्नी को प्यार करते हो। इसके बाद प्यार बच्चों में चला जाता है, यानि कि अब प्यार बँट जाता है, फिर बच्चों के दोस्तों में चला जाता है, उसके बाद पड़ोसियों में चला जाता है। इस प्रकार से प्यार विस्तृत होता जाता है। प्यार और जीवन का विकास यह सब एक ही बातें हैं। आवश्यकता है निःस्वार्थी होने की। यही तुम्हारे लिए जीवन में खुशियाँ प्रदान कर सकता है।

योग हमें बतलाता है कि हम किस प्रकार से निःस्वार्थी हो सकते हैं, हमने किस प्रकार से अपने मन को नियन्त्रित करना है। नियन्त्रण का तात्पर्य है कि इन शक्तियों को हमने दूसरी तरफ किस प्रकार से लगाना है। हमने इन शक्तियों को रोकना नहीं है। यदि मैं एक नवविवाहित दम्पत्ति को कहूँ कि तुम लोग काम भावना को नियन्त्रण में रखो तो इससे मेरा तात्पर्य है कि संयम में रहो। प्रत्येक चीज को संयम में रखना ही नियन्त्रण है। यदि तुम अपने आप को संयम में नहीं रखते हो तो फिर तुम स्वयं को दुखी कर लेते हो। फिर एक

दूसरे के लिए तुम्हारा प्यार कम हो जाता है। एक दूसरो के समझो, एक दूसरे का सम्मान करो, इसी को नियन्त्रण कहते हैं। अपनी शक्ति को सम्भाल कर रखो।

योग का सबसे पहला पाठ यही है कि देखो, पड़ताल करो, समझो और अपनी सारी शक्ति के प्रति चेतन होओ। शक्ति तो तुम्हारे अन्दर से ही आती है। सांसारिक सुख व आराम हमें कुछ समय के लिए आराम दे सकते हैं, लेकिन वे दीर्घकालिक नहीं हो सकते हैं। अन्त में तो तुम्हें आन्तरिक शक्ति की ही जरूरत है और यह अन्दर की शक्ति हमें शनैः शनैः अपने अन्दर बनानी पड़ती है। पति और पत्नी एक दूसरे को प्यार करते हैं लेकिन फिर भी वे अलग अलग हो जाते हैं, क्यों? इसका कारण यह है कि उन्होंने एक दूसरे के अनुसार समयोजन नहीं किया, उन्होंने अपनी आन्तरिक शक्ति को विस्तृत नहीं किया।

शक्ति तुम्हारे अन्दर है

मनुष्य पूरी तरह से अपने अन्दर यह सामर्थ्य रखता है कि वह अपनी शक्ति को विस्तृत करे लेकिन शर्त यह है कि कि वह ज्ञान के श्रोत का उपयुक्त ढंग से प्रयोग कर सके। हम जितने शक्तिशाली बाहर से हैं उससे कहीं अधिक शक्ति हमारे अन्दर विद्यमान होती है किसी बड़ी से बड़ी चट्टान के अन्दर भी इतनी शक्ति नहीं होती है जितनी कि अणु में होती है। जब हम उसे तोड़ते हैं तो उसकी शक्ति और भी बढ़ जाती है। ठीक इसी प्रकार से यदि हम और अधिक गहरे चले जाएँ तो हम देखेंगे कि हमारी शक्ति और अधिक बढ़ती चली जाती है। क्या तुमने कभी उस शक्ति का सृजनात्मक ढंग से प्रयोग किया? तुम नित्य प्रतिदिन व्यर्थ चीजों के लिए ही अपने समय को बरबाद कर लेते हो। चिन्ता के अन्दर कितना समय बरबाद हो जाता है। चिन्ता तथा नकारात्मक विचार तुम्हारा कितना समय खा जाते हैं। यदि मैं मर जाऊँ तो क्या होगा? यदि मेरा ऐक्सीडेंट हो जाए तो क्या होगा? यदि मैं बीमार पड़ जाऊँ तो क्या होगा? यदि मेरा पति मुझे छोड़ जाए तो क्या होगा? यदि मेरी पत्नी मुझे छोड़ जाए तो क्या होगा? यह किस प्रकार का प्यार है जबकि तुम दोनों ही सुरक्षित महसूस नहीं करते हो? यदि तुम प्रत्येक समय यही सोचते रहो कि वह मुझे छोड़ जाएगा तो क्या होगा? बहुत सारे कवि तो यह कहते हैं कि जहाँ पर बहुत गहरा प्यार हो वहाँ पर तुम असुरक्षित महसूस करते ही हो लेकिन यह कोई गहरा प्यार नहीं है। यदि तुम सुरक्षित महसूस ही नहीं करते हो तो इसका तात्पर्य है कि तुम्हारा पारस्परिक प्यार ही नहीं है।

प्रसन्न रहने का सर्वोत्तम तरीका है कि दूसरों की बात ही न सुनो लेकिन स्वयं का सुधार करो और स्वयं को अनुशासन में लेकर आओ। तुम इस बात की परवाह न करो कि तुम कितनी बार फेल हो जाते हो, बस तुम अपनी तरफ से निष्कपट होकर कोशिश करते रहो लेकिन सारा अनुशासन दो बातों पर निर्भर होना चाहिए। पहली बात है कि तुम्हारा लक्ष्य है खुशी प्राप्त करनी और दूसरी बात है कि तुम उस खुशी को प्राप्त करने के लिए सारे सम्बन्धित कार्य करोगे। इसके अतिरिक्त तुम जो भी कुछ सकारात्मक जानते हो, उसे करो। जैसे कि अच्छी रोटी बनानी, कसरत करनी, अच्छी तरह से रहना आदि सब अच्छे जीवन के साधन हैं। सर्वोत्तम है माता पिता की सेवा व उनका आदर करना, अपने जीवन साथी का सम्मान करना। रिश्तों के अन्दर केवल प्यार ही जरूरी नहीं है बल्कि एक दूसरे की इज्जत व सम्मान भी उतना ही आवश्यक है। यदि तुम अपने प्यार की इज्जत नहीं करते हो तो फिर वह एक मजाक बन कर रह जाता है यानि कि वह एक हास्यास्पद रिश्ता बन जाता है, एक स्वार्थ बन जाता है। प्यार की सीढ़ी का पहला डण्डा है - सम्मान। अपने साथी की इज्जत करनी। यदि तुम्हें अपने प्यारे के लिए सम्मान ही नहीं है तो फिर तुम प्रत्येक समय उसके अन्दर दोष ही निकालते रहोगे और तुम्हें उसके अन्दर बहुत कुछ गलत ही प्रतीत होगा। फिर तुम प्रत्येक समय यह कहोगे कि तुमने यह नहीं किया, तुमने वह नहीं किया। दूसरी तरफ सामंजस्य का गुण तुम्हें अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान कर सकता है, स्वयं को कभी भी प्रतियोगता में ही डालकर न देखो।

बहुत बार मैंने किसी को कहा कि तुम्हारी पत्नी बहुत अच्छी है लेकिन उसे यह बात अच्छी नहीं लगी। वह कहने लगा, मेरे बारे में क्या सोचते हो? मैं किस प्रकार का हूँ? वह समझता ही नहीं है कि मैं उसे क्या कहने की कोशिश कर रहा हूँ। दरअस्ल मैं यह कह रहा हूँ कि तुम्हें बहुत खुश होना चाहिए। मैं तुम्हारा, तुम्हारी पत्नी के लिए प्यार तुरन्त देख सकता हूँ। जब मैं तुम्हारी पत्नी की तारीफ करूँ तो मैं तुम्हारे चेहरे से वास्तविकता को देख सकता हूँ कि तुम्हें अपनी पत्नी के साथ कितना प्यार है। फिर मैं पत्नी को मिलता हूँ और उसे कहता हूँ कि मैं तुम्हारे पति को मिला था, वह तो बहुत ही अच्छा व्यक्ति है। यदि तुम अपने पति की तारीफ को सुनकर खुश ही नहीं होते हो, अपने बच्चों की तारीफ को सुनकर खुश ही नहीं होते हो और यहाँ तक कि अपनी तारीफ को सुनकर भी खुश नहीं होते हो तो फिर इसका तात्पर्य है कि तुमने रिश्तों की अहमीयत को या उसके महत्व को समझा ही नहीं है। तुम्हें अपने रिश्ते पर कोई गर्व नहीं है, उसका कोई महत्व नहीं है।

'चलता'

(पृष्ठ 52 का शेष)

समझ लिया है।

दरूं मरदमुकि दीदा दिलरूबा दीदम
बहर तर कि नजर करदम आशना दीदम।

मैंने अपनी आँख की पुतली में उस दिल हरण करने वाले को देखा है। मैंने जिधर भी अपनी निगाह दौड़ाई है, मैंने अपने साजन को ही देखा है।

बगिरदि काअबा ओ बुतखाना हर दो गरदीदम
दिगर नयाफतम आँ जा हमीं तुरा दीदम।

मैंने काबे और मन्दिर दोनों जगहों की परिक्रमा की है, मुझे तो प्रत्येक जगह तुम्हारे बिना अन्य कोई भी दिखाई नहीं पड़ा है।

बहर कुजा कि नजर करदम अज राहि तहिकीक
वले बखानाइ दिल खुद खुदा दीदम।

जहाँ भी मैंने निश्चयपूर्वक देखा अपने दिल के प्रत्येक कोने में मुझे परमात्मा ही परमात्मा दिखाई पड़ा -

मरा जि रूजि अजल आमद ईं निदा गोया
कि इंतहाइ जहाँ रा दर इबतदा दीदम।

गोया! मेरे कानों में पहले दिन से ही यह आवाज पड़ी है कि इस संसार के अन्त को मैंने इसके आदि में ही देख लिया है।

हर जाकि दीदा एम जमालि तू दीदा एम
मा जुज जमालि दूसत तमाशा नमी कुनेम।

जहाँ भी हमने देखा, तुम्हारा जलाल ही देखा। हम दोस्त के जलाल के बिना अन्य कोई भी तमाशा नहीं देखते हैं।

परवाना-वार गिरदि रूखि शमआ जाँ दिहेम
चू अंदलीब बेहुदा गंगा नमी कुनेम।

अपने सज्जन के साथ में होते हुए हम अन्य किसी को भी नहीं देखते हैं। हम तो किसी अन्य के सामने आँख भी उठाकर नहीं देखते हैं।

रतवाड़ा साहिब में महापुरुषों के प्रवचनों का कार्यक्रम

प्रत्येक रविवार रतवाड़ा साहिब - 12.00 बजे से 3.30 बजे तक

पूर्णमाशी - 14 सितम्बर, दिन शनिवार। (शाम 7.00 बजे से 10.00 बजे तक)

संक्रान्ति - असुनि, 17 सितम्बर, दिन मंगलवार। (प्रातः 5.30 बजे से 8.00 बजे तक)

अमृत संचार - 1 सितम्बर, महीने के प्रथम रविवार।

INTERNET MEDIA AND LIVE TELECAST

Website : www.ratwarasahib.in
Website : www.ratwarasahib.org
Instagram : RATWARA SAHIB (https://instagram.com/ratwara.sahib/)
You Tube : https://www.youtube.com/user/babalakhbirsingh
Facebook : https://www.facebook.com/ratwarasahib1
Twitter : https://mobile.twitter.com/ratwarasahib13
Live Audio Link 1 - https://www.awdio.com/Ratwara Sahib
Live Audio Link 2 - https://mixlr.com/ratwara-sahib
E-mail :- sratwarasahib.in@gmail.com

Contact - 9569455861, 9417912900, 9814612900

आवश्यक निवेदन

आत्म मार्ग मैगज़ीन की मैंबरशिप/रिन्यिूवल या दसवंद पंजाब एंड सिंध बैंक की किसी भी शाखा द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में भेजी जा सकती है।

भारत (INDIA)

आत्म मार्ग मैगज़ीन की मैंबरशिप/रिन्यिूवल भेजने के लिए -

VGRMCT / Atam Marg Magazine
S/B A/C No. 12861000000003 RTGS/IFSC Code - PSIB0021286
Branch Code - C1286

दसवंद भेजने के लिए -

Vishav Gurmat Roohani Mission Charitable Trust
SB A/C No. 12861100000005 RTGS/IFSC Code - PSIB0021286
Branch Code - C1286

विदेश (ABROAD)

Vishav Gurmat Roohani Mission Charitable Trust
Punjab National Bank SB A/C No. 0779000100179603
RTGS/IFSC Code - PUNB0077900 Branch Code - 077900

यदि चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट द्वारा राशि भेजनी हो तो ऊपरलिखित खातों अनुसार **Gurdwara Ishar Parkash Ratwara Sahib, P.O. Mullanpur Garibdas. Distt S.A.S. Nagar (Mohali) - 140901** पर भेजने की कृपा करें। यदि **Online** राशि भेजनी हो तो राशि की जानकारी देते समय अपना नाम व पूरा पता मोबाइल नं. +91-98889-10777 पर **SMS** भेजें जी।

सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि यदि आपने अभी तक आत्म मार्ग मासिक पत्रिका की सदस्यता ग्रहण नहीं की है तो आप कृप्या अधोलिखित प्रारूप पत्र को भरकर सदस्यता ग्रहण करने की कृपा करें। यदि आप पहले से ही सदस्यता ग्रहण कर चुके हैं, तो पुनर्नवीनीकरण हेतु इस प्रारूप पत्र के साथ आवश्यक चैक/ड्राफ्ट "VGRMCT/ATAM MARG MAGAZINE" के नाम पर प्रेषित करने की कृपा करें।

Subscription form ✓ ☐ नई सदस्यता ☐ पुनर्नवीनीकरण ☐ आजीवन सदस्यता

within India

Subscription Period	By Ordinary Post/Cheque	By Registered Post/Cheque
1 Year	Rs. 300/320	
3 Year	Rs. 750/770	
5 Year	Rs. 1200/1220	
Life	Rs 3000/3020	

	Annual	Life
U.S.A.	60 US$	600 US$
U.K.	40 £	400 £
Europ	50 Euro	500 Euro
Australia	80 Aus $	800 Aus $

जनवरी ☐ फरवरी ☐ मार्च ☐ अप्रैल ☐ मई ☐ जून ☐ जुलाई ☐ अगस्त ☐ सितम्बर ☐ अक्तूबर ☐ नवम्बर ☐ दिसम्बर ☐

नाम/Name पता/Address.....

.....

.....Pin Code..... Phone ..... E-mail :.....

सन्त वरियाम सिंह चैरिटेबल अस्पताल, रतवाड़ा साहिब

समय - सुबह 9.30 बजे से 2.00 बजे तक (रविवार से शुक्रवार)
डाक्टरों का समय - सुबह 10.00 बजे से 12.00 बजे तक
दूरभाष नं. 98786-95178, 92176-93845

डा. का नाम	विशेषज्ञ	दिन
1. डा. जसबीर कौर	जनरल मैडिसन	सोमवार
2. डा. गुरिंदर कौर कंग	एम. डी. (गाइनी)	सोमवार
3. डा. कुलदीप सिंह कंग	एम. डी. (आँखों के विशेषज्ञ)	सोमवार
4. डा. हरबंस सिंह	अस्थि रोग तथा जनरल मैडिसन	मंगलवार
5. डा. तेजिंदर सिंह	जनरल मैडिसन	मंगलवार
6. श्री माइकल जी	एक्स-रे विशेषज्ञ	मंगलवार तथा वीरवार
7. डा. जे. एस. गुजराल	जनरल मैडिसन/शिशु रोग विशेषज्ञ	मंगलवार तथा वीरवार
8. डा. आर. एस. संधू	अस्थि रोग तथा जनरल मैडिसन	वीरवार
9. डा. संतोष अनेजा	जनरल मैडिसन	वीरवार
10. डा. एस. के. बांसल	जनरल मैडिसन	शुक्रवार
11. डा. बरिन्दर सिंह	जनरल मैडिसन तथा त्वचा रोग विशेषज्ञ, एअरो स्पेस मैडिसन	शुक्रवार
12. डा. जिंदल	जनरल मैडिसन	रविवार
13. डा. गुरप्रीत कौर गिल	होम्योपैथिक	बुद्धवार
14. डा. कुलदीप कौर	दाँतों के विशेषज्ञ	मंगलवार

-: लैबोरेटरी टैस्ट तथा अन्य सुविधाएँ :-

1. खून टैस्ट, 2. सारे खून सैल काउंट टैस्ट 3. ब्लड शुगर टैस्ट, 4, किडनी टैस्ट, 5. लीवर टैस्ट, 6. लिपिड परोफाइल टैस्ट, 7. थायराइड टैस्ट, 8. हिमोग्लोबिन टैस्ट, 9. पेशाब टैस्ट, 10. स्टूल टैस्ट, 11. ई.सी.जी., 12. एक्स-रे (क्ष-किरण)

सारे लैबोरेटरी टैस्ट आधे शुल्क पर किये जाते हैं तथा मरीज को दवाई मुफ्त दी जाती है।

प्रत्येक रविवार को अस्पताल खुला रहेगा। समय 11.00 से 1.00 बजे तक। प्रत्येक शनिवार को अस्पताल बन्द रहेगा।

विश्व गुरमत रूहानी मिशन चैरिटेबल ट्रस्ट

के मुख्य संस्थापक प्यारे महापुरुष सन्त बाबा वरियाम सिंह जी द्वारा लिखित व प्रकाशित पुस्तकें

यह पुस्तकें श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल रूप में स्पष्ट करके जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। इनकी विषय वस्तु के रूप में नाम, सेवा व स्मरण की विधियों को प्रस्तुत करते हुए जन साधारण की भाषा का अत्यन्त सरल, मार्मिक व हृदयस्पर्शी प्रयोग किया गया है। यह दुर्लभ पुस्तकें, प्रत्येक जिज्ञासु व साधक के लिए एक अमूल्य निधि के रूप में हैं। अध्यात्मिक सुख व शान्ति प्राप्त करने हेतु आप इन्हें प्राप्त करके स्वयं पढ़ें तथा अन्य श्रद्धालुजनों को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। यह सभी पुस्तकें गुरुद्वारा ईशर प्रकाश रतवाड़ा साहब में आपकी सेवार्थ उपलब्ध हैं -

हिन्दी	
1. सुरति शबद मार्ग	70/-
2. किव कुड़ै तुटै पालि	35/-
3. बात अगंम की - सात भागों में	400/-
4. किव सचिआरा होइए - भाग पहला	35/-
5. किव सचिआरा होइए - भाग दूसरा	65/-
6. किव सचिआरा होइए - भाग तीसरा	100/-
7. होवै आनन्द घणा	30/-
8. बाबाणियाँ कहानियाँ	50/-
9. सुरतिआं उपजै चाउ	40/-
10. सर्व प्रिय गुरू गोबिंद सिंह जी	10/-
11. भक्त प्रहलाद	10/-
12. अमृत फुहार	10/-
13. अगम अगोचर का मार्ग	70/-
14. जपुजी साहिब सटीक	15/-
15. अमर ज्योतियाँ	15/-
16. अमर गाथा	100/-
17. वैशाखी	10/-
18. साजन चले प्यारिआ	10/-
19. अविनाशी ज्योति - भाग 1	90/-
20. रूहानी गुलदस्ता	70/-
21. चउथै पहरि सबाह कै	60/-

English Version	Price
1. Baisakhi	Rs. 5/-
2. How Rend The Veil of Untruth	Rs. 70/-
C. Discourses on the Beyond -1	Rs 50/-
4. Discourses on the Beyond -2	Rs. 50/-
5. Discourses on the Beyond -3	Rs. 50/-
6. Discourses on the Beyond -4	Rs. 60/-
7. Discourses on the Beyond -5	Rs. 60/-
8. The way to the imperceptible	Rs. 80/-
9. The Lights Immortal	Rs. 20/-
10. Transcendental Bliss	Rs. 70/-
11. How to Know Thy Real Self-(Vol-1)	Rs. 80/-
12. How to Know Thy Real Self-(Vol-2)	Rs. 80/-
13. How to Know Thy Real Self-(Vol-3)	Rs. 110/-
14. The Dawn of Khalsa Ideals	Rs. 10/-
15. A Glimpse of His Holiness - Baba ji	Rs. 5/-
16. Divine Word Contemplation Path	Rs. 150/-
17. The Story of Immortality	Rs. 260/-
18. Why not Contemplate the Lord	Rs. 200/-

ऊपरलिखित पुस्तकें आप जी मनीआर्डर, चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट द्वारा रतवाड़ा साहिब से मंगवा सकते हैं या ट्रस्ट के अकाउंट में राशि जमां करवा कर मोबाइल नं. 9417214391, 9592009106, 9417214379 पर सूचित कर सकते हैं। **Bank Name : Pb & Sind Bank, A/c Name. VGRMCT/Atam Marg Magazine, S/B A/C No. 12861000000003, RTGS/IFSC Code - PSIB0021286, Branch Code - C1286**

सन्त बाबा हरपाल सिंह जी
वार्षिक गुरमति समागमों में
पृथक-पृथक स्थानों पर संगत
को कीर्तन द्वारा निहाल
करते हुए

नगर आदोआणा
(नवां शहर)

नगर मजारा
(श्री आनंदपुर साहिब)

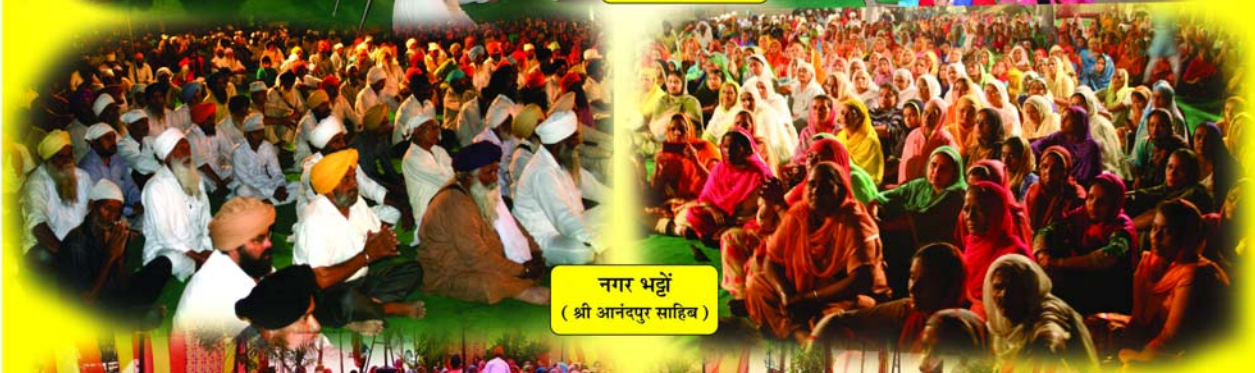

नगर भट्ठों
(श्री आनंदपुर साहिब)

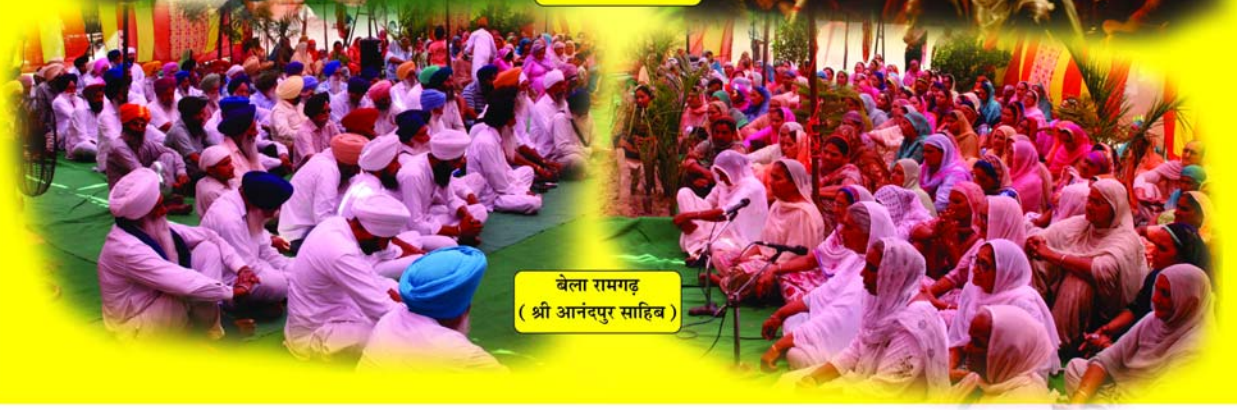

बेला रामगढ़
(श्री आनंदपुर साहिब)

श्री गुरू नानक साहिब जी के 550 वर्षीय प्रकाशोत्सव के सम्बन्ध में

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी के गुरुगद्दी दिवस पर

समस्त शहीदों की याद में

ब्रह्मलीन श्रीमान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी

तथा परम सम्माननीया सन्त माता रणजीत कौर जी

रतवाड़ा साहिब वालों की पावन स्मृति में

पाँच दिवसीय

महान गुरमति समागम

30-31 अक्टूबर 1-2-3 नवम्बर

2 0 1 9

रतवाड़ा साहिब

आत्म मार्ग के सहृदय पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

देश व विदेशों में निवास करते हुए आत्म मार्ग के सहृदय पाठकों द्वारा यह सुझाव प्राप्त हुआ है कि आत्म मार्ग का अंग्रेजी सैक्शन, मैगजीन में प्रकाशित करने की बजाए इंटरनेट मीडिया पर डाल दिया जाए ताकि अधिकाधिक पाठकगण इसका लाभ प्राप्त कर सकें। ट्रस्ट रतवाड़ा साहिब ने इस सुझाव को स्वीकार करते हुए यह निर्णय लिया है कि सितम्बर 2019 से अंग्रेजी भाग के 20 पृष्ठ आत्म मार्ग मैगजीन में प्रकाशित करने की बजाए इसे इंटरनैट मीडिया पर डाल दिया जाएगा। इस प्रकार से अधिकाधिक पाठकगण इसका लाभ प्राप्त कर सकेंगे। अव सितम्बर 2019 से अंग्रेजी के 20 पृष्ठ इंटरनैट मीडिया के माध्यम से पढ़ने की कृपा करें।

ट्रस्ट रतवाड़ा साहिब

www.ratwarasahib.org, www.ratwarasahib.com